अल-रिसाला

जून-जुलाई 2021

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान

(1925-2021)

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

 cpsglobal.org

 twitter.com/WahiduddinKhan

 facebook.com/maulanawkhan

 youtube.com/CPSInternational

 +91-99999 44118

 t.me/maulanawahiduddinkhan

 linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan

instagram.com/maulanawahiduddinkhan

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

दुआ की क़बूलियत

क़ुरआन की एक आयत इस तरह आई है— “कहो कि ऐ मेरे बंदो! जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है, वह बख़्शने वाला, मेहरबान है।”

क़ुरआन की इस आयत में एक बंदा-ए-मोमिन के लिए अज़ीम तस्कीन (solace) का सामान मौजूद है। इसमें एक मोमिन बंदे के लिए दुआ का एक अहम पॉइंट ऑफ़ रेफ़रेंस (point of reference) है। बंदा अल्लाह रब्बुल आलामीन से एक चीज़ का तालिब है, मसलन यह कि वह चाहता है कि ख़ुदा उसके मुआमलात को सँभालने वाला बन जाए। इस आयत को लेकर एक बंदा-ए-मोमिन कहता है— “ख़ुदाया! मैं आख़िरी हद तक एक आजिज़ इंसान हूँ, लेकिन क़ुरआन की यह आयत बताती है कि तेरी रहमत बहुत वसीअ है। ख़ुदाया! तूने मेरे गुनाहों के बारे में यह फ़रमा दिया है कि तू ख़ुद उसे माफ़ फ़रमाएगा। अब मैं जो दुआ कर रहा हूँ, तो क्या तू मेरी दुआ को रिजेक्ट कर देगा यानी जब तू बंदों के मुआमले में इतना फ़य्याज़ है कि बग़ैर माँगे ही तू ऐलान कर रहा है कि तू उनके गुनाहों को माफ़ फ़रमाएगा, तो जब मैं ख़ुद से सवाल कर रहा हूँ तो क्या तू इसे पूरा नहीं फ़रमाएगा।”

सबसे बड़ी दुआ वह है, जो हक़ीक़ी पॉइंट ऑफ़ रेफ़रेंस के हवाले से की जाए। जिस इंसान को शऊरी तौर पर इस हक़ीक़त की दरयाफ़्त हो जाएगी, वह पुकार उठेगा कि ख़ुदाया! मैं कामिल तौर पर आजिज़ इंसान हूँ, लेकिन तूने अपनी रहमत से बिना मेरी किसी क़ाबिलियत के मुझे यकतरफ़ा तौर पर तमाम चीज़ें अता की हैं। मौत के बाद भी दोबारा मैं अपने आपको कामिल तौर पर इज्ज़ की हालत में पाऊँगा। ख़ुदाया! जिस तरह तूने मौत से पहले की ज़िंदगी में मेरे इज्ज़ की कामिल भरपाई की, इसी तरह तू मौत के बाद की ज़िंदगी में भी मेरे इज्ज़ का मुकम्मल बदल अता फ़रमा, मेरे तमाम गुनाहों को अपनी रहमत से माफ़ कर दे।

कस्टम मेड यूनीवर्स

हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में एक रिवायत इस तरह आई है— “रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने कहा— ‘जिसने इस हालत में सुबह की कि वह जिस्मानी तौर पर सेहत वाला हो, अपने घर में अमन से रह रहा हो और उसके पास उस दिन की रोज़ी हो, तो गोया उसके लिए पूरी दुनिया जमा कर दी गई।’ ”

मैं रोज़ाना सुबह को जब अपने ऑफ़िस से निकलकर बाहर बैठता हूँ, तो सचमुच वाक़यतन महसूस होता है कि सारी दुनिया मेरे लिए पैदा की गई है। हर चीज़ मेरी ख़िदमत में लगी हुई है। ग़िज़ा, पानी, ऑक्सीजन वग़ैरह-वग़ैरह तमाम चीज़ें मुकम्मल तौर पर मेरी ख़िदमत में लगी हुई हैं। गोया यह यूनीवर्स इंसान के लिए एक कस्टम मेड यूनीवर्स (custom made universe) है। यह इंसान की ज़रूरत के ऐन मुताबिक़ है। इस हक़ीक़त पर अगर इंसान ग़ौर करे तो वह कभी मनफ़ी सोच (negative thinking) का शिकार न हो। वह हमेशा नेअमतों के एहसास में जीने लगे। उसकी ज़बान पर हमेशा शुक्र का कलिमा जारी रहे, हत्ता कि इंसान एक गिलास पानी पीता है और वह जिस्मानी निज़ाम के तहत हज़्म होकर बाहर निकल जाता है तो इस पर उसे शुक्र अदा करना चाहिए। इसी तरह हर चीज़, जो इस दुनिया में इंसान को मिलती है, उस पर शुक्र का जज़्बा पैदा होना बिलकुल फ़ितरी (natural) बात है, मसलन ग़िज़ा, हवा के ज़रिये ऑक्सीजन का मिलना, पानी की मुसलसल सप्लाई का जारी रहना वग़ैरह। अगर इंसान सोचे तो ये तमाम चीज़ें हर वक़्त अल्लाह रब्बुल आलमीन की नेअमत की याद हैं।

इसी तरह मज़्कूरा हदीस में है कि वह अपने घर में अमन से हो। इसका मतलब यह है कि वह पुर-अमन सोच या मुस्बत सोच के साथ अपने दिन की इब्तिदा करे। इस दुनिया का तजुर्बा बताता है कि इस दुनिया में इंसान के लिए जो चॉइस है, वह दूसरों से एडजस्ट करते हुए अपने मुआमलात को मैनेज (manage) करना है। उसे यह करना है कि वह पुरअमन अंदाज़ में पेश आने वाले चैलेंज का मुक़ाबला करे। इसी हक़ीक़त को मज़्कूरा हदीस ‘घर में अमन से रहना’ कहा गया है।

दीन पर अमल

एक हदीस-ए-रसूल इस तरह है— "इस उम्मत के शरारतपसंद लोग पिछले अहल-ए-किताब के तरीक़े को अपनाएँगे, जैसे एक तीर दूसरे तीर की तरह होता है।" (मुसनद अहमद, हदीस नं० 17,135) इस हदीस के मुताबिक़ मुसलमान अपने बिगाड़ के ज़माने में वही करेंगे, जो यहूद-ओ-नसारा ने अपने बिगाड़ के ज़माने में किया था।

अलबत्ता यहाँ एक फ़र्क़ है। वह यह कि पिछले पैग़ंबरों का लाया हुआ ख़ुदाई पैग़ाम महफ़ूज़ नहीं। इसके बरअक्स पैग़ंबर-ए-इस्लाम का लाया हुआ क़ुरआन पूरी तरह महफ़ूज़ है। आपकी सुन्नत भी पूरी तरह महफ़ूज़ है। इस तरह यह इमकान हमेशा बाक़ी रहेगा कि क़ुरआन-ओ-सुन्नत के मुताले से दीन-ए-मुहम्मदी को दोबारा दरयाफ़्त किया जाए और इसे असल सूरत में इख़्तियार किया जाए। क़ुरआन-ओ-सुन्नत का महफ़ूज़ होना इस बात की गारंटी है कि मजमूए की सतह पर ख़्वाह बिगाड़ आ जाए, लेकिन अफ़राद की सतह पर हमेशा उम्मत में ऐसे अफ़राद मौजूद रहेंगे, जो असल दीन को दोबारा दरयाफ़्त करके मुकम्मल तौर पर उसकी पैरवी करें।

मौजूदा दौर में ज़िंदगी गुज़ारने के दो तरीक़े हैं— एक यह कि आप मीडिया में अपना वक़्त गुज़ारें। बे-ख़ौफ़ दिल के साथ लोगों से बहसें करें। आपका सारा कंसर्न मीडिया की ख़बरें हों, न कि क़ुरआन-ओ-हदीस में बयानकर्दा बातें। इस क़िस्म के लोगों का शाकला (mindset) मीडिया की ख़बरों की बुनियाद पर बनेगा, न कि क़ुरआन और सुन्नत की बुनियाद पर। यही वह लोग हैं, जो पिछली क़ौमों की पैरवी करते हैं।

दूसरी शक्ल यह है कि तआहुद बिल-क़ुरआन (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 5,033) आपकी मसरूफ़ियत हो यानी क़ुरआन और हदीस में ग़ौर-ओ-फ़िक्र आपके दिन-रात का अमल बना हुआ हो। आप क़ुरआन के मायने को समझने में अपनी सुबह-ओ-शाम गुज़ारते हों। आप क़ुरआन-ओ-हदीस में गहरा ग़ौर-ओ-फ़िक्र करने वाले बने हुए हों। इस तरह मुताले और ग़ौर-ओ-फ़िक्र के नतीजे में आप पर क़ुरआन के और हदीस के नए-नए मायने खुलें और

फिर आप उनको अपनी ज़िंदगी में अपना रहनुमा बना लें। यही लोग हक़ीक़ी मायनों में रब्बानी हैं।

दज्जाल का दौर

साब बिन जसामा बिन क़ैस लैसी (वफ़ात : 25 हि०) एक सहाबी हैं। इन्होंने रसूलुल्लाह का एक क़ौल इन अल्फ़ाज़ में नक़ल किया है— साब बिन जसामा कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह से सुना, आपने कहा— "दज्जाल नहीं निकलेगा, यहाँ तक कि लोग अल्लाह के ज़िक्र से ग़ाफ़िल हो जाएँ।" (मोअज्जम अल-सहाबा, जिल्द 2, सफ़हा 8)

मुताले से मालूम होता है कि दज्जाल किसी शख़्सियत का नाम नहीं है, बल्कि एक दौर का नाम है, जबकि गुमराही बहुत फैल जाएगी। वह गुमराही यह होगी कि लोगों के ज़हन से ख़ुदा की मारिफ़त ख़त्म हो जाएगी। इस ग़फ़लत का सबब ऐसे ख़यालात या नज़रियात होंगे, जिस पर बज़ाहिर इस्लाम का लेबल लगा होगा, मगर वे इस्लाम से दूर करने वाले होंगे।

दज्जालियत का दौर वह है, जबकि दुनिया में प्रोफ़ेशनल एजूकेशन का दौर होगा यानी वह एजूकेशन, जिसके ज़रिये अफ़राद को हुनरमंद बनाया जाए, मसलन तिजारत, नर्सिंग, इंजनीयरिंग और क़ानून वग़ैरह, लेकिन वह इल्म जिससे मारिफ़त में इज़ाफ़ा हो, वह कम हो जाएगा। लोग पैसा कमाएँगे, लेकिन सच्चे इल्म से बे-ख़बर होंगे। लोगों की जेबें भरी होंगी, इस बिना पर वे बहुत बोलेंगे और बहुत ज़्यादा बहसें करेंगे। बज़ाहिर इल्म का चर्चा होगा, लेकिन यह चर्चा माद्दी इंटरेस्ट के लिए होगा, न कि अल्लाह की मारिफ़त में इज़ाफ़े के लिए।

यह वह ज़माना होगा, जबकि माल की कसरत की वजह से लोग नफ़्सपरस्ती में मुब्तला हो जाएँगे। झूठ की कसरत होगी। सच्चाई को मानने का मिज़ाज कम हो जाएगा। इसके बरअक्स अपनी बात मनवाने वालों की कसरत हो जाएगी। सुनाने वाले बहुत हो जाएँगे, लेकिन सुनने वाले मौजूद न होंगे। पैसे की इफ़रात की बिना पर लोग ग़ैर-संजीदा हो जाएँगे। हर आदमी अपने ही को

सब कुछ समझेगा। दूसरे की बात सुनना और इस पर ग़ौर करना, यह मिज़ाज दुनिया से ख़त्म हो जाएगा।

औरत और मर्द का फ़र्क़

अंग्रेज़ मुस्तशरिक[1] (orientalist) एडवर्ड विलियम लेन (1801-1876) एक मुतर्जिम और लुग़तनिगार[2] (lexicographer) था। वह अंग्रेज़ी के इलावा अरबी ज़बान में महारत रखता था। अरबी ज़बान के डेटा (data) के लिए उसने मिस्र में कई बरस क़ियाम किया। उसने एक किताब 'मुंतख़ब तर्जुमा-ए-क़ुरआन' (Selections from the Kuran) तैयार की, जो पहली बार लंदन से 1843 में छपी। इस किताब के दीबाचे में लेन ने लिखा था कि इस्लाम का तबाहकुन पहलू औरत को हक़ीर दर्जा देना है।

The fatal point in Islam is the degradation of woman. (p. 90)

मुस्तशरिक लेन ने 1843 में जो बात कही थी, इससे उसकी ख़ास मुराद यह थी कि इस्लाम के क़ानून-ए-शहादत (evidence) में दो औरतों की गवाही को एक मर्द की गवाही के बराबर माना गया है। यह मर्द और औरत के दरम्यान खुली हुई ना-बराबरी है। इसके बाद बतौर तस्लीमशुदा हक़ीक़त यह बात मान ली गई कि इस्लाम अहद-ए-जाहिलियत का मज़हब है, वह साइंसी दौर का मज़हब नहीं बन सकता।

इस्लाम के ख़िलाफ़ यह नज़रिया डेढ़ सौ साल तक चलता रहा। इसके बाद मुख़्तलिफ़ अस्बाब से साइंसी हलक़ों में यह ज़रूरत महसूस की गई कि औरत और मर्द के दिमाग़ के बारे में दोबारा रिसर्च की जाए और यह मालूम किया जाए कि क्या दोनों की दिमाग़ी बनावट में कोई फ़र्क़ है। इस रिसर्च की वजह यह सवाल था कि एक औरत और एक मर्द के दरम्यान 'लव मैरिज' होती है और फिर बेशतर वाक़यात में ऐसा होता है कि दोनों लड़-भिड़कर एक-दूसरे से अलग हो जाते हैं।

---

[1] मशरिक़ी दुनिया का मुताला और रिसर्च करने वाले।

[2] डिक्शनरी लिखने वाले।

इस सिलसिले में बड़ी-बड़ी यूनीवर्सिटियों और इदारों के तहत साइंसी अंदाज़ में बहुत-सी रिसर्च की गईं, यहाँ तक कि ख़ालिस साइंसी रिसर्च के बाद यह मालूम हुआ कि औरत और मर्द के दिमाग़ में फ़ितरी बनावट के ऐतबार से ऐसा फ़र्क़ पाया जाता है, जिसे बदलना मुमकिन नहीं। वह फ़र्क़ यह है कि मर्द पैदाइशी तौर पर सिंगल ट्रैक माइंड (single-track mind) का हामिल होता है और इसके मुक़ाबले में औरत फ़ितरी तौर पर मल्टी ट्रैक माइंड (multi-track mind) रखती है। अंग्रेज़ी वेबसाइट बी०बी०सी० पर छपी रिपोर्ट 24 अक्तूबर, 2013 के मुताबिक़—

Women, better at multitasking than men, study finds.

It is not a myth - women really are better than men at multitasking, at least in certain cases, a study says... says co-author Dr Gijsbert Stoet of the University of Glasgow, 'Multitasking is getting more and more important in the office, but it's very distracting, all these gadgets interrupting our workflow.'

www.bbc.com/news/science-environment-24645100 (accessed on 07.04.2021)

यानी रिसर्च के मुताबिक़ औरतें एक वक़्त में कई ज़िम्मेदारियों की अंजामदेही में मर्दों से बेहतर हैं। यह कोई फ़र्ज़ी बात नहीं है। औरतें मल्टी टास्क के कम-अज़-कम कुछ मुआमलों में मर्दों से बेहतर हैं। ग्लास्गो यूनीवर्सिटी के डॉक्टर गज़बर्ट इस्टाइट कहते हैं कि ऑफ़िस में मल्टी टास्क ज़्यादा-से-ज़्यादा बेहतर है, लेकिन यह डिस्ट्रेक्ट करता है। यह तरीक़ा काम की रफ़्तार में रुकावट पैदा करता है।

मर्द व औरत के दरम्यान यह फ़र्क़ इतना आम है कि इसे हर घर में देखा जा सकता है। कोई भी घर जहाँ पर औरत और मर्द दोनों इकट्ठे रहते हों, वहाँ आप देख सकते हैं कि मर्द का ज़हन किसी एक पॉइंट पर मुतवज्जह रहेगा, जबकि औरत का यह हाल होगा कि इसका ज़हन एक ही वक़्त में कई चीज़ों की तरफ़ मुतवज्जह रहेगा, मसलन— मर्द अगर एक किताब पढ़ रहा है तो उसका सारा

ध्यान किताब में लगा रहेगा, हत्ता कि पास के कमरे में अगर टेलीफ़ोन की घंटी बजे तो वह उसे सुन नहीं सकेगा। हालाँकि इसी कमरे में बैठी हुई औरत दूसरे कमरे में बजने वाली टेलीफ़ोन की घंटी को बख़ूबी तौर पर सुन लेगी।

औरत के ज़हन और मर्द के ज़हन का यह फ़ितरी फ़र्क़ बताता है कि गवाही के क़ानून में दोनों के दरम्यान फ़र्क़ रखने का सबब क्या है? इसका सबब यह है कि एक वाक़या, जिसे औरत और मर्द दोनों देख रहे हों, उसे मर्द जब देखेगा तो वह उसे यकसूई (focus) के तहत देखेगा। इस बिना पर वह इस क़ाबिल होगा कि वाक़ये के तमाम पहलू उसके हाफ़िज़े में महफ़ूज़ हो सकें। इसके मुक़ाबले में औरत अपने ज़हन की फ़ितरी बनावट की बिना पर चीज़ों को सरसरी अंदाज़ में देखेगी। उसके ज़हन का एक हिस्सा वाक़ये की तरफ़ मुतवज्जह होगा और उसके ज़हन का दूसरा हिस्सा किसी और चीज़ की तरफ़ मुतवज्जह हो जाएगा। इस बिना पर एक गवाह औरत के साथ दूसरी गवाह औरत रखी गई, ताकि दोनों मिलकर वाक़ये की पूरी तस्वीर बना सकें।

मज़्कूरा साइंसी तहक़ीक़ की रोशनी में क़ुरआन की मुताल्लिक़ा (related) आयत ज़्यादा क़ाबिल-ए-फ़हम बन जाती है। इस आयत का तर्जुमा क़ुरआन में इस तरह है— “तुम अपने मर्दों में से दो मर्दों को गवाह बना लो और अगर दो मर्द न हों तो फिर एक मर्द और दो औरतें, उन लोगों में से जिन्हें तुम पसंद करते हो, ताकि अगर एक औरत की गवाही देने में भूल-चूक हो जाए तो दूसरी औरत उसे याद-दिहानी करा दे।” (2:282)

क़ुरआन की मज़्कूरा आयत में ‘ज़ल्ला’ का लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है। ज़ल्ला के मायने अरबी ज़बान में इधर-उधर भटकने (go astray) के होते हैं। यह लफ़्ज़ इस मुआमले में ऐन साइंसी है। इस हक़ीक़त को सामने रखते हुए अगर मज़्कूरा आयत का मफ़हूम मुतय्यन किया जाए तो वह यह होगा, अगर ज़हनी बनावट की बिना पर एक औरत की तवज्जोह असल वाक़ये से कुछ हट जाए तो दूसरी औरत उसे याद दिलाकर पहली औरत की कमी पूरी कर दे।

हक़ीक़त यह है कि यह आयत इस बात का वाज़ेह सबूत है कि क़ुरआन आलिमुल-ग़ैब की तरफ़ से उतारी हुई किताब है। ख़ुदा-ए-आलिमुल-ग़ैब ने अपने इल्म की बिना पर मर्द और औरत के दरम्यान फ़ितरी फ़र्क़ को उस वक़्त

जाना, जबकि आम इंसान इस फ़र्क़ से बिलकुल नावाक़िफ़ था। इस इल्म की बिना पर ख़ुदा ने गवाही का मज़्कूरा उसूल मुक़र्रर किया। मज़्कूरा आयत इस बात का एक इल्मी सुबूत है कि क़ुरआन एक ऐसी किताब है, जो अब्दी सदाक़त की हामिल है। क़ुरआन ख़ुदा-ए-बरतर की किताब है, न कि आम मायनों में कोई किताब।

डी-लिंकिंग एक सुन्नत-ए-रसूल

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की एक सुन्नत वह है, जिसे डी-लिंकिंग पॉलिसी (delinking policy) कहा जा सकता है। मिसाल के तौर पर मक्का में आपने अपना मिशन शुरू किया। उस वक़्त मक्का अहल-ए-शिर्क के क़ब्ज़े में था। उन्होंने काबा को 360 बुतों का मरकज़ बना दिया था। रसूलुल्लाह ने यह किया कि काबा में आने वाले तीर्थयात्री (pilgrims) और इसमें मौजूद बुतों को एक-दूसरे से अलग करके देखा यानी बुतपरस्ती और काबा के क़रीब बुतपरस्तों के इज्तिमा में फ़र्क़ करना। इस तरह डी-लिंकिंग पॉलिसी इख़्तियार करने की बिना पर आपके लिए यह मुमकिन हुआ कि आप मुकम्मल तौर पर मुस्बत ज़हन के साथ अपने दावत इलल्लाह के मिशन को अंजाम दे सकें। अगर आप डी-लिंकिंग पॉलिसी इख़्तियार न करते तो यह फ़ायदा कभी हासिल न होता।

ऐसा क्यों है? इसे सहाबी-ए-रसूल अम्र बिन अल-आस (वफ़ात : 43 हि०) के क़ौल से समझा जा सकता है। उनका क़ौल यह है— “अक़्लमंद वह नहीं है, जो ख़ैर के मुक़ाबले में शर को पहचाने, बल्कि अक़्लमंद वह है, जो यह जाने कि दो शर के दरम्यान ख़ैर क्या है।” (अल-मजालिसा-व-जवाहिर अल-इल्म, हदीस नं० 670)

इसका मतलब यही है कि शर के मुख़्तलिफ़ पहलुओं को डी-लिंक करके देखा जाए तो शर के अंदर भी ख़ैर का पहलू मिल जाएगा। आपने काबा में बुत और बुतपरस्तों के मुआमले में जो तरीक़ा इख़्तियार किया, वह क्या था? इन बुतों का ज़ाहिरी पहलू यह था कि वह शिर्क का ज़रिया था। इसका दूसरा

पहलू यह था कि इन्हीं बुतों की वजह से वहाँ लोग जमा होते थे और उसकी वजह से वहाँ एक ऑडियंस (audience) बनता था। रसूलुल्लाह ने यह किया कि बुतों के मुशरिकाना पहलू को अलग कर दिया और बुतों की वजह से वहाँ आने वाले लोगों को अपने लिए बतौर ऑडियंस इस्तेमाल किया। इस दुनिया का क़ानून यह है कि यहाँ हर 'उस्र' के साथ 'युस्र' का पहलू मौजूद होता है। इंसान अगर मुस्बत ज़हन के साथ मुआमले पर ग़ौर करे तो हर 'उस्र' में उसे 'युस्र' का पहलू मिल जाएगा।

उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ जब हिंदुस्तान में आए तो उन्होंने मुसलमानों को बहुत-सी चीज़ें दीं, मसलन अंग्रेज़ी तालीम जिसकी वजह से मुसलमान इस क़ाबिल हुए कि वे हिंदुस्तान के बाहर की दुनिया को देख सकें, लेकिन सारे मुसलमानों ने हिंदुस्तान में एंटी ब्रिटिश तहरीक चला दी। इसी तरह आज़ादी के बाद जो हुकूमत आई, उसने भी मुसलमानों को बहुत कुछ दिया, लेकिन दोबारा मुसलमानों को हुकूमत से शिकायत पैदा हो गई वग़ैरह।

इसका सबब यह है कि मुस्लिम लीडरान ज़िंदगी के एक उसूल को नहीं जानते हैं। मुस्लिम लीडर इस फ़ितरी क़ानून को नहीं जानते कि हर 'उस्र' के साथ 'युस्र' मौजूद होता है (अल-इनशिराह, 94:5-6)। उस्र का मतलब है प्रॉब्लम और युस्र का मतलब मौक़ा (opportunity) यानी प्रॉब्लम के दरम्यान मौजूद मवाक़े को जानना और मंसूबाबंद अंदाज़ में उन्हें इस्तेमाल (avail) करना, यही ज़िंदगी का उसूल है, लेकिन मुस्लिम लीडरों ने इस उसूल को न पहले जाना और न वे अब इसे जानते हैं। उन्होंने हमेशा एक काम किया है, वह है मौजूद मवाक़े को नज़रअंदाज करना और जो चीज़ मौजूद नहीं है, उसके ऊपर तहरीक चलाना। यही ग़ैर-हक़ीक़ी तरीक़-ए-कार हर दौर में मुसलमानों पर ग़ालिब रहा है। इसलिए मुसलमानों ने हर दौर में सिर्फ़ खोया है, किसी भी दौर में वे पाने वाली चीज़ को पाने में कामयाब नहीं हुए।

क़ुरआन की सूरह अल-बक़रा में ज़िंदगी की एक हक़ीक़त को इस तरह बयान किया गया है— "और हम ज़रूर तुमको आज़माएँगे, कुछ डर और भूख से और मालों और जानों और फलों की कमी से और साबित क़दम रहने वालों को ख़ुशख़बरी दे दो।" (2:155) तो इसी ऐतबार से हुकूमत का मिलना और

इसका हाथ से निकलना वग़ैरह भी इसमें शामिल है और सब्र का मतलब है मसाइल को नज़रअंदाज करना और मवाक़े को इस्तेमाल करना।

Ignore the problem, avail the opportunity.

इंसान पर ज़िंदगी के जो मुख़्तलिफ़ मरहले पेश आते हैं, वे एक मौक़े के तौर पर पेश आते हैं। ज़िंदगी को जानने वाला शख़्स वह है, जो ज़िंदगी को एक मौक़े की सूरत में दरयाफ़्त करे और फिर मंसूबाबंद अंदाज़ में इस मौक़े को इस्तेमाल करे। मुश्किल हालात मनफ़ी चीज़ नहीं। मुश्किल हालात या चैलेंज किसी इंसानी गिरोह को तख़्लीक़ी (creative) गिरोह बनाता है। जब किसी गिरोह के अंदर ऐसे हालात पैदा हों तो इंसान उसे फ़ितरत का तोहफ़ा समझे और डी-लिंकिंग का तरीक़ा इख़्तियार करके वह इसे बतौर मौक़ा इस्तेमाल करे। इस तरह ग़ैर-तख़्लीक़ी (non-creative) गिरोह तख़्लीक़ी (creative) गिरोह बन जाएगा।

दुश्मन से सीखना

1949 में जापानियों ने अपने यहाँ एक इंडस्ट्रियल सेमीनार किया। इस सेमीनार में उन्होंने अमरीका के डॉक्टर एडवर्ड डैमिंग को ख़ुसूसी दावतनामा भेजकर बुलाया। डॉक्टर डैमिंग ने अपने लैक्चर में आला इंडस्ट्रियल पैदावार का एक नया नज़रिया पेश किया। यह क्वालिटी कंट्रोल (quality control) का नज़रिया था। (हिंदुस्तान टाइम्स; 28 दिसंबर, 1986)

जापान के लिए अमरीका के लोग दुश्मन क़ौम की हैसियत रखते थे। दूसरी जंग-ए-अज़ीम में अमरीका ने जापान को बदतरीन शिकस्त और ज़िल्लत से दो-चार किया था। इस ऐतबार से होना यह चाहिए था कि जापानियों के दिल में अमरीका के ख़िलाफ़ नफ़रत की आग भड़के, मगर जापानियों ने अपने आपको इस क़िस्म के मनफ़ी जज़्बात से ऊपर उठा लिया। यही वजह है कि उनके लिए यह मुमकिन हुआ कि वे अमरीकी प्रोफ़ेसर को अपने सेमीनार में बुलाएँ और उसके बताए हुए फ़ॉर्मूले पर ठंडे दिल से ग़ौर करके उसे दिल-ओ-जान से क़बूल कर लें।

जापानियों ने अमरीकी प्रोफ़ेसर की बात को पूरी तरह पकड़ लिया। उन्होंने अपनी पूरी इंडस्ट्री को क्वालिटी कंट्रोल के रुख़ पर चलाना शुरू किया। उन्होंने अपने सनअतकारों (industrialist) के सामने बे-नुक़्स (zero-defect) का मक़सद रखा यानी ऐसी पैदावार मार्केट में लाना, जिसमें किसी भी क़िस्म का कोई नुक़्स न पाया जाए। जापानियों की संजीदगी और उनका डेडिकेशन (dedication) इस बात का ज़ामिन बन गया कि यह मक़सद पूरी तरह हासिल हो। जल्द ही ऐसा हुआ कि जापानी अपने कारख़ानों में बे-नुक़्स सामान तैयार करने लगे, यहाँ तक कि यह हाल हुआ कि बर्तानिया (Britain) के एक दुकानदार ने कहा कि जापान से अगर मैं एक मिलियन की तादाद में कोई सामान मँगाऊँ तो मुझे यक़ीन होता है कि उनमें कोई एक चीज़ भी नुक़्स वाली नहीं होगी। चुनाँचे तमाम दुनिया में जापान की पैदावार पर सद फ़ीसद भरोसा किया जाने लगा।

अब जापान की तिजारत बहुत ज़्यादा बढ़ गई। हत्ता कि वह अमरीका के बाज़ार पर छा गया, जिसके एक माहिर की तहक़ीक़ से उसने क्वालिटी कंट्रोल का फ़ॉर्मूला हासिल किया था। इस दुनिया में बड़ी कामयाबी वह लोग हासिल करते हैं, जो हर एक से सबक़ सीखने की कोशिश करें, ख़्वाह वह उनका दोस्त हो या उनका दुश्मन।

तख़्लीक़ी अमल

अहले-ईमान के अमल की एक सूरत यह है कि वे क़ुरआन-ओ-हदीस को पढ़ें, फिर उस पर अमल करें, मसलन यह कि पाँच वक़्त नमाज़ें पढ़ना और रमज़ान के महीने में रोज़े रखना वग़ैरह। एक और ख़ास अमल यह है कि एक शख़्स ग़ौर-ओ-फ़िक्र करके कोई मतलूब अमल दरयाफ़्त करे और उसे अमल में लाने की प्लानिंग करे। इस दूसरे अमल को तख़्लीक़ी अमल कह सकते हैं। इज्तिहादी अमल अपनी हक़ीक़त के ऐतबार से एक तख़्लीक़ी अमल है। एक हदीस-ए-रसूल इस तरह है— "जब हाकिम इज्तिहाद करे और उसका वह हुक्म दुरुस्त न हो तो उसे एक अज्र मिलेगा और अगर उसने इज्तिहाद किया और इसमें वह दुरुस्तगी को पहुँच गया तो उसके लिए दोहरा अज्र है।" (मुसनद अबू याला, हदीस नं० 228)

इज्तिहादी अमल या तख़्लीक़ी अमल की इतनी ज़्यादा अहमियत है कि करने वाला इसमें ग़लती करे, तब भी उसे एक सवाब है और अगर इज्तिहाद दुरुस्त हो तो दोहरा सवाब है। यह इसलिए है कि लोगों के अंदर तख़्लीक़ी अमल के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा शौक़ पैदा हो। तख़्लीक़ी अमल में आदमी को बहुत ज़्यादा जद्दोजहद करनी पड़ती है, इसलिए उसका सवाब बहुत ज़्यादा है। मिसाल के तौर पर एक शख़्स ने क़ुरआन-ओ-हदीस और मौजूदा हालात पर ग़ौर किया। उसके बाद उसे यह दरयाफ़्त हुई कि मौजूदा ज़माने में एक इंटरनेशनल ज़बान वजूद में आई, जिसके ज़रिये इंटरनेशनल तब्लीग़ के मवाक़े पैदा हुए हैं। इसके बाद वह यह करे कि इंटरनेशनल ज़बान में क़ुरआन का मेयारी तर्जुमा तैयार करे और उसे सारी दुनिया में फैलाए तो यह तख़्लीक़ी अमल होगा। आम अमल का भी सवाब है, लेकिन तख़्लीक़ी अमल का सवाब बहुत ज़्यादा है। तख़्लीक़ी अमल का ख़ास ताल्लुक़ दावती अमल से है। दावत में तख़्लीक़ी अमल की बहुत ज़्यादा अहमियत है, मसलन अगर आप क़ुरआन की दावत को आलमी सतह पर फैलाना चाहें तो उसके लिए बहुत ज़्यादा तख़्लीक़ी फ़िक्र को काम में लाना पड़ेगा। तख़्लीक़ी अमल के बग़ैर कोई बड़ा दावती काम अंजाम नहीं दिया जा सकता है।

डर, पस्त हिम्मती

एक क़ारी अल-रिसाला लिखते हैं। मेरे एक साथी हैं, जो जुनूबी हिंद में दावती काम करते हैं। आजकल वह बीमार हैं, मैं उनकी इयादत के लिए गया था। दौरान-ए-गुफ़्तगू उन्हें अपना तास्सुर बताया— “जब हम टीम की शक्ल में 1998 में शुमाली हिंद के दावती दौरे पर गए तो उस वक़्त मुख़्तलिफ़ शख़्सियात और इदारों में जाने का मौक़ा मिला, ताकि दावती काम का तआरुफ़ हो और हमें अच्छा मशवरा और हौसला मिले। उन्होंने बताया कि इस सफ़र में तक़रीबन सारे ही अफ़राद ने हमें डराया और पस्त हिम्मत किया और कहा कि दावती काम के लिए हालात ना-साज़गार हैं। इसमें सिर्फ़ एक शख़्सियत का इस्तिस्ना हैं, वह मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ साहिब हैं। उन्होंने हमारी हिम्मत अफ़्ज़ाई की और हमें मुफ़ीद मशवरे से नवाज़ा।”

मौलाना हमारे ये साथी बहुत ही एक्टीव दाई हैं। उन्होंने कहा— “मैं आजकल बीमारी के अय्याम में ख़ुद-एहतिसाबी (self-introspection) की ज़िंदगी गुज़ार रहा हूँ। मैं कन्फ्यूज़न का शिकार हूँ। उसकी वजह क्या है? अब तक मुझे उसका जवाब नहीं मिला।”

जब मैं उनसे मिलकर वापस आ गया तो उन्होंने मुझे यह पैग़ाम भेजा— “आप मेरी इयादत के लिए आए और मुझे दुआओं के साथ बहुत कुछ देकर गए। जब से मैं बीमार हुआ हूँ, अपने और अपनी दावती टीम के सिलसिले में बहुत सोचता रहता हूँ कि हमने बीस साल का अरसा लगाकर क्या हासिल किया? हमारा रुख़ किधर है? क्या हम दावतरुख़ी (Dawah-oriented) ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं? दावत के नाम पर हम क्या-क्या काम कर रहे हैं? वग़ैरह-वग़ैरह। इस तरह के सवालात ज़हन में आते हैं। मैं उनके जवाबात की तलाश में हूँ। किसी सवाल का कुछ जवाब मिलता है, किसी का नहीं। ख़ैर, सारी चीज़ें अपनी डायरी में लिख रहा हूँ। क्या पता मेरे रब की तरफ़ से दोबारा मौक़ा मिले तो मैं अपनी इस्लाह करूँ।”

मौलाना जब उन्होंने आपकी शख़्सियत का एतराफ़ बतौर दाई के किया, फिर भी अपने मक़सद और मिशन को लेकर कन्फ्यूज़न का शिकार हैं। उसकी वजह क्या हो सकती है? मेरा ख़्याल यह है कि कुछ उलेमा मुसलमानों की निस्बत से दरम्यानी बात करते हैं और कन्फ्यूज़न का शिकार रहते हैं। इसलिए वह ‘दावत भी करेगा और अदवात भी करेगा’ कहते हैं। उसके बरअक्स मुतय्यन रहनुमाई पर अगर कोई चले तो उसे शख़्सियतपरस्ती का नाम देते हैं, यही उनका ज़हनी इंतिशार है। इस पर कुछ रहनुमाई फ़रमाएँ।

जवाब

पिछले सौ साल से ज़्यादा मुद्दत के अंदर मुसलमानों में बहुत-सी तहरीकें उठी हैं। बज़ाहिर उनके नाम मुख़्तलिफ़ हैं, मगर अपनी हक़ीक़त के ऐतबार से सबका मुहर्रिक एक था और वह था रद्द-ए-अमल। ये तमाम तहरीकें रद्द-ए-अमल (reaction) की तहरीकें थीं। दौर-ए-जदीद की मुख़्तलिफ़ तहरीकों को उन्होंने इस्लाम के लिए और मुसलमानों के लिए ख़तरा समझा और वे उसके ख़िलाफ़ हिफ़ाज़त के लिए उठ खड़े हुए। मेरे इल्म के मुताबिक़ उनमें से कोई

तहरीक हक़ीक़ी मायनों में अल्लाह और आख़िरत और जन्नत के लिए नहीं उठी। यही वजह है कि उनमें कहीं-न-कहीं मनफ़ी नफ़्सियात मौजूद थी। इसी मनफ़ी नफ़्सियात का सबब है कि बज़ाहिर वे कोई भी नाम लें, मसलन दावत या तब्लीग़, मगर अपनी हक़ीक़त के ऐतबार से वे रद्द-ए-अमल (reaction) की तहरीकें थीं और जो तहरीक बतौर रद्द-ए-अमल के लिए उठे, उसके अंदर वही कमी पाई जाएगी जिसकी निशानदेही आपके साथी ने की।

क़ुरआन की तालीमात के मुताबिक़ मुसलमान की हैसियत शाहिद की है और दूसरे अक़्वाम की हैसियत मशहूद की (85:3) यानी दूसरे अल्फ़ाज़ में मुसलमान और दूसरी क़ौमों के दरम्यान दाई और मदऊ का ताल्लुक़ है। दाई और मदऊ का ताल्लुक़ हो तो लोगों के अंदर दूसरी क़ौमों के लिए ख़ैरख़्वाही का जज़्बा परवान चढ़ेगा। इसके बरअक्स, मुसलमान उन्हें मुख़ालिफ़ीन समझें तो वे मनफ़ी ज़हनियत का शिकार हो जाएँगे। दूसरी क़ौमों के बारे में वे ख़ैरख़्वाही के अंदाज़ में नहीं सोच पाएँगे, जबकि पैग़ंबर अपनी मदऊ क़ौम से कहते थे— "मैं तुम्हारा अमानतदार ख़ैरख़्वाह हूँ।" (7:68)

पैग़ंबर शुऐब ने कहा था— "मैंने तुम्हारी ख़ैरख़्वाही की, मगर तुम ख़ैरख़्वाहों को पसंद नहीं करते।" (7:79) दूसरे अल्फ़ाज़ में इसका मतलब यह है कि तुम अपनी भलाई चाहने वालों को पसंद नहीं करते हो, उसके बावजूद मैंने यकतरफ़ा तौर पर तुम्हारे साथ ख़ैरख़्वाही की।

इस मनफ़ी मिज़ाज की बिना पर मुसलमानों में मुख़्तलिफ़ क़िस्म की ग़लत सोच पैदा हुई। इसी बिना पर ये तहरीकें मुसलमानों के अंदर सेहतमंद मिज़ाज बनाने में बुरी तरह नाकाम साबित हुईं। हत्ता कि तजुर्बा बताता है कि लोग बज़ाहिर ख़्वाह मुख़्तलिफ़ क़िस्म के दाईआना अल्फ़ाज़ बोलें, लेकिन उनके अंदर से दाईआना जज़्बा तक़रीबन ख़त्म हो चुका है। इसलिए इन तहरीकों से वाबस्ता अफ़राद से मिलिए तो बहुत जल्द वे ज़ुल्म और साज़िश के अल्फ़ाज़ बोलने लगते हैं, जिसे मज़्कूरा मुलाक़ात में डर और पस्त हिम्मती के अल्फ़ाज़ से ताबीर किया गया है।

इस सूरत-ए-हाल से महफ़ूज़ रहने का रास्ता सिर्फ़ एक है। वह यह है कि पिछली ग़लतियों का एतराफ़ किया जाए और दोबारा मुस्बत अंदाज़ में दावत

इलल्लाह की मंसूबाबंदी की जाए। आम तौर पर यह होता है कि उन्हें एहसास होता है कि माज़ी में ग़लती हुई, तब भी वे खुलकर उसका एतराफ़ करने के लिए तैयार नहीं होते, बल्कि यह चाहते हैं कि ग़लती का एतराफ़ किए बग़ैर कुछ नया काम किया जाए, मगर इस क़िस्म का काम कभी नतीजाख़ेज़ नहीं हो सकता, क्योंकि ग़लत सरगर्मियों के ज़माने में जो ज़हन बना है, उसे ऐलान के साथ तर्क करना ज़रूरी है। अगर ऐलान के साथ तर्क न किया जाए तो मुमकिन है कि इसके असरात हमेशा बाक़ी रहें।

इसी तरह आपके दोस्त ने कुछ अफ़राद के हवाले से जो यह बात कही है कि उन्होंने हमें डराया और पस्त हिम्मत किया और कहा कि दावती काम के लिए हालात ना-साज़गार हैं। ऐसे लोगों पर हज़रत आयशा का यह क़ौल साबित आता है— “उन्होंने क़ुरआन-ओ-हदीस पढ़ा, मगर उन्होंने क़ुरआन-ओ-हदीस नहीं पढ़ा।” (मुसनद अहमद, हदीस नं० 24,609)

हक़ीक़त यह है कि हदीस से आम तौर पर सिर्फ़ कुछ छोटे-छोटे मसले निकाले जाते हैं, जिन्हें जुज़ई (फ़ुरूई) मसाइल कहा जाता है। इसके बरअक्स हदीस में अब्दी रहनुमाई का जो पहलू था, वह उम्मत की निगाहों से ओझल होकर रह गया। यह हदीस की तसग़ीर (underestimation) है। हदीस या सुन्नत-ए-रसूल से सबसे बड़ी चीज़ दरयाफ़्त करने की यह है कि रसूलुल्लाह ने मसाइल को मवाक़े में तब्दील किया। हदीस को पढ़ने वाले हदीस से सब कुछ निकालते हैं, मगर इस क़िस्म की अब्दी हिक्मत अभी तक नहीं निकाल पाए। उनके मौजूदा मनफ़ी ज़हन का यही असल सबब है।

पैग़ंबर-ए-अमन : The Prophet of Peace

पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन अब्दुल मुत्तलिब (वफ़ात : 632 ई०) के मुताल्लिक़ इतिहासकारों ने आम तौर पर एतराफ़ किया है कि उन्होंने अपनी ज़िंदगी में आलातरीन कामयाबी हासिल की। मिसाल के तौर पर ब्रिटिश इतिहासकार एडवर्ड गिब्बन (1737-1794) ने अपनी किताब ‘द हिस्ट्री ऑफ़ द डिक्लाइन एंड फॉल ऑफ़ रोमन एम्पायर’ में पैग़ंबर-ए-

इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह का ज़िक्र करते हुए उनके लाए हुए इंक़लाब को तारीख़ का सबसे ज़्यादा क़ाबिल-ए-ज़िक्र वाक़या बताया है।

The rise and expansion of Islam was one of the most memorable revolutions which has impressed a new and lasting character on the nations of the globe.

एम.एन. राय एक इंडियन लीडर थे। वह बंगाल में 1887 मैं पैदा हुए और 1954 में उनकी वफ़ात हुई। उनकी किताब 'हिस्टोरीकल रोल ऑफ़ इस्लाम' पहली बार दिल्ली से 1939 में छपी। इस किताब में वह लिखते हैं कि मुहम्मद को तमाम पैग़ंबरों में सबसे बड़ा पैग़ंबर मानना चाहिए। इस्लाम का फैलना तमाम करिश्मों से ज़्यादा बड़ा करिश्मा है।

Mohammad must be recognized as by far the greatest of all prophets. The expansion of Islam is the most miraculous of all miracles. (p. 4)

अमरीका के डॉक्टर माइकल हार्ट की किताब 'द हंड्रेड' न्यूयॉर्क से 1978 में छपी। इस किताब में उन्होंने पूरी इंसानी तारीख़ से सौ ऐसे अफ़राद की फ़ेहरिस्त बनाई है, जिन्होंने उनके मुताबिक़ आला कामयाबियाँ हासिल की। इस फ़ेहरिस्त में उन्होंने टॉप पर पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह का नाम रखा है। वह लिखते हैं— "वह तारीख़ के तन्हा शख़्स हैं, जो इंतिहाई हद तक कामयाब रहे। मज़हबी सतह पर भी और दुनियावी सतह पर भी।"

He was the only man in history who was supremely successful on both the religious and secular levels.

यहाँ यह सवाल है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अबदुल्लाह की इस अज़ीम कामयाबी का राज़ क्या था? इसका राज़ एक लफ़्ज़ में अमन था। यह कहना ग़ालिबन सही होगा कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम तारीख़ के सबसे बड़े पैसिफ़िस्ट (pacifist) थे। उन्होंने पुर-अमन तरीक़े (peaceful method) को एक कामयाबतरीन हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया। इस सिलसिले में क़ुरआन में इरशाद हुआ है— 'अस्सुल्हु ख़ैर' (4:128) यानी इख़्तिलाफ़ी मुआमलात में पुरअमन तरीक़ा ज़्यादा नतीजाख़ेज़ तरीक़ा है।

Peaceful method is a far more effective method.

इसी तरह ख़ुद पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने फ़रमाया— "अल्लाह नरमी पर वह चीज़ देते हैं, जो वह सख़्ती पर नहीं देते।"

God grants to peace what He does not grant to violence.

पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह की ज़िंदगी का मुताला बताता है कि आपने अमन को एक मुकम्मल आइडियोलॉजी के तौर पर दरयाफ़्त किया। आपने अमन को एक ऐसे तरीक़ा-ए-कार के तौर पर दरयाफ़्त किया, जो हर सूरत-ए-हाल के लिए सबसे मुअस्सिर (effective) तदबीर की हैसियत रखता था।

एक मुफ़क्किर ने लिखा है कि— "तारीख़ के तमाम इंक़लाबात सिर्फ़ हुक्मरानों की तब्दीली के वाक़यात थे, वे हक़ीक़ी मायनों में इंक़लाब न थे।"

यह बात अगर सही हो तो पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह का नाम इस मुआमले में एक इस्तिस्ना माना जाएगा, क्योंकि यह एक तारीख़ी हक़ीक़त है कि आपके लाए हुए इंक़लाब के ज़रिये वे तमाम इनफ़िरादी, समाजी और सियासी तब्दीलियाँ वक़ूअ में आईं जिनके मजमूए को इंक़लाब कहा जाता है।

अपने मुताले की बुनियाद पर मेरा एहसास यह है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम की इंसानी तारीख़ में जो देन (contribution) है, उसके लिहाज़ से उनका सबसे ज़्यादा मुनासिब नाम यही हो सकता है कि उन्हें 'अमन का पैग़ंबर' (Prophet of Peace) कहा जाए।

तारीख़ एक ऐसा डिसिप्लिन है, जिसमें यह इमकान रहता है कि मुताला करने वाला एक से ज़्यादा रायों (opinion) तक पहुँच जाए, लेकिन मुसन्निफ़ का यह ख़्याल है कि ऐसा ज़्यादातर महदूद मुताले की बिना पर होता है। अगर मुताला ज़्यादा गहरा हो तो एक से ज़्यादा राय का इमकान बहुत कम हो जाता है।

एक मिसाल से इसकी वज़ाहत होती है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी में कुछ दिफ़ाई लड़ाइयाँ पेश आईं। उनमें से एक दिफ़ाई लड़ाई वह थी, जिसे

'जंग-ए-बदर' कहा जाता है। रिवायात में आता है कि जिस वक़्त जंग का वाक़या हुआ, पैग़ंबर-ए-इस्लाम मैदान-ए-जंग से बाहर एक छप्पर के नीचे बैठे हुए थे। अपने हाथ या लकड़ी से आप रेत पर कुछ लकीरें खींचते नज़र आए। इस वाक़ये को लेकर एक मुस्तशरिक (Orientalist) ने बतौर ख़ुद उसे जंग से मंसूब किया और लिखा— "क़ाइद-ए-इस्लाम उस वक़्त अपनी अगली जंग का मंसूबा बना रहे थे।"

The leader of Islam was making his next war plan.

मुस्तशरिक ने यह बात किसी हवाले के बग़ैर सिर्फ़ अपने क़यास की बुनियाद पर लिख दी। हालाँकि दूसरी रिवायात को देखा जाए तो ख़ुद रिवायत की बुनियाद पर यह मालूम होता है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम उस वक़्त क्या कर रहे थे। वह दरअसल यह नक़्शा बना रहे थे कि आइंदा किस तरह अमन क़ायम किया जाए।

चुनाँचे दूसरी रिवायत में बताया गया है कि जिस वक़्त बदर की यह दिफ़ाई जंग हो रही थी, ऐन उसी वक़्त ख़ुदा का फ़रिश्ता आपके पास आया और कहा कि ख़ुदा ने आपको सलाम भेजा है। यह सुनकर पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने फ़रमाया— "ख़ुदा सलामती है और उसी से सलामती है और उसी की तरफ़ सलामती है।" (अल-बिदाया व अल-निहाया, जिल्द 3, सफ़हा 267)

इस दूसरी रिवायत के मुताबिक़ दुरुस्त तौर पर यह कहा जा सकता है कि जंग-ए-बदर के मौक़े पर पैग़ंबर-ए-इस्लाम अपना अगला मंसूबा-ए-अमन बना रहे थे।

The leader of Islam was making his next peace plan.

पैग़ंबर-ए-इस्लाम को क़ुरआन (21:107) में पैग़ंबर-ए-रहमत कहा गया यानी 'प्रोफेट ऑफ़ मर्सी'। 'प्रोफेट ऑफ़ मर्सी' ही का दूसरा नाम 'प्रोफेट ऑफ़ पीस' है। दोनों एक ही हक़ीक़त को बयान करने के लिए दो मुख़्तलिफ़ अंदाज़ की हैसियत रखते हैं।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम का मिशन कोई पॉलिटिकल मिशन नहीं था। आपके मिशन को दूसरे अल्फ़ाज़ में रूहानी (spiritual) मिशन कहा जा सकता है। क़ुरआन (2:129) में इसे तज़किया-ए-नफ़्स (purification of the soul) बताया गया है यानी इंसान को कामिल इंसान बनाना। दूसरी जगह क़ुरआन

(89:27) में इसके लिए 'अल-नफ़्स-उल मुतमइन्ना' (complex-free soul) के अल्फ़ाज़ आए हैं।

इस क़िस्म का मक़सद सिर्फ़ नसीहत और तज़कीर (persuasion) के ज़रिये हासिल हो सकता है। यह मक़सद ज़हन की तशकील-ए-नौ (re-engineering of the mind) का तालिब है। यह मक़सद सिर्फ़ इंसान की सोचने की क़ुव्वत को बेदार करके हासिल किया जा सकता है। इसे हासिल करने का ज़रिया सियासी इंक़लाब नहीं है, बल्कि ज़हनी इंक़लाब है। यही वजह है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम की तालीमात तमामतर अमन के तसव्वुर पर मबनी हैं।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की लाई हुई किताब क़ुरआन में तक़रीबन 6,236 आयतें हैं। इन आयतों में ब-मुश्किल चालीस आयतें ऐसी हैं, जिनमें क़िताल या जंग का ज़िक्र है यानी कुल आयतों का एक फ़ीसद से भी कम। क़ुरआन की 99 फ़ीसद से ज़्यादा आयतें वे हैं, जिनमें इंसान की क़ुव्वत-ए-फ़िक्र को बेदार किया गया है। इसलिए क़ुरआन में बार-बार तदब्बुर-ओ-तफ़क्कुर (introspection and contemplation) पर उभारा गया है। दूसरे अल्फ़ाज़ में यह भी कह सकते हैं कि क़ुरआन गोया 'आर्ट ऑफ़ थिंकिंग' (art of thinking) के मौज़ूअ पर एक किताब है, वह किसी भी दर्जे में 'आर्ट ऑफ़ फ़ाइटिंग' (art of fighting) की किताब नहीं।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की तालीमात और आपकी ज़िंदगी के मुताले से मालूम होता है कि आपने न सिर्फ़ नज़रिया-ए-अमन पेश किया, बल्कि आपने निहायत कामयाबी के साथ पुर-अमन ज़िंदगी के लिए एक मुकम्मल तरीक़-ए-कार दिया।

He was able to develop a complete methodology of peaceful activism.

इस्लाम के बाद की सियासी तारीख़ ने पैग़ंबर-ए-इस्लाम के इस पहलू पर एक पर्दा डाल दिया था। अब ज़रूरत है कि इस पर्दे को हटाया जाए। यह हटाना गोया पैग़ंबर-ए-इस्लाम की दरयाफ़्त-ए-नौ (re-discovery of the Prophet of Islam) है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी का मुताला बताता है कि आपने न सिर्फ़ अमन का एक नज़रिया (ideology) पेश किया, बल्कि अमन को

अमल में लाने के लिए वह एक मुकम्मल तरीक़ेकार (methodology of peace) तैयार करने में कामयाब हुए। गोया कि आप नज़रिया-ए-अमन के मुफ़क्किर (ideolog) भी थे और नज़रिया-ए-अमन को अमली इंक़लाब की सूरत देने वाले भी।

इब्तिदाई हालात

अरब एक जज़ीर-ए-नुमा (peninsula) है। वह एशिया के जुनूब-मग़रिबी (south-west) हिस्से में मौजूद है। यह एक रेगिस्तानी मुल्क है और इंतिहाई क़दीम ज़माने से आबाद है। क़दीम ज़माने से यहाँ मुख़्तलिफ़ क़बाइल अपने-अपने इलाक़ों में रहते थे। हर क़बीले का सरदार उनके ऊपर हाकिम हुआ करता था।

चार हज़ार साल पहले पैग़ंबर इब्राहीम ने अपने ख़ानदान को मक्का के इलाक़े में आबाद किया। यह लोग एक ख़ुदा को मानते थे और एक ख़ुदा की परस्तिश करते थे, लेकिन रफ़्ता-रफ़्ता बाहर के असरात से यह लोग बुतों को पूजने वाले बन गए। अब भी वे समाजी रिवायत के तौर पर एक ख़ुदा को मानते थे, मगर इसी के साथ अमली तौर पर वे बहुत से बुतों को पूजते थे। छठी सदी ई० में पूरा अरब एक बुतपरस्त मुल्क बन चुका था। अरब के यही हालात थे, जबकि पैग़ंबर-ए-इस्लाम वहाँ पैदा हुए।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन अब्दुल मुत्तलिब अरब के शहर मक्का में 570 ई० में पैदा हुए। उन्होंने 610 ई० में मक्का में अपनी पैग़ंबरी का ऐलान किया। 622 ई० में वह अरब के दूसरे शहर मदीना चले गए। 632 ई० में मदीना में उनकी वफ़ात हुई। इस तरह आपकी कुल उम्र 63 साल थी और आपकी पैग़ंबराना उम्र 23 साल।

आप पैदा हुए तो आपके वालिद अब्दुल्लाह बिन अब्दुल मुत्तलिब का इंतक़ाल हो चुका था। आपकी उम्र छः साल थी तो आपकी वालिदा आमना बिंत वह्ब भी इंतक़ाल कर गईं। इसके बाद आप अपने दादा अब्दुल मुत्तलिब

और अपने चचा अबू तालिब की सरपरस्ती में रहे। क़ुरआन में ख़ुदा ने पैग़ंबर-ए-इस्लाम की इब्तिदाई ज़िंदगी के बारे में फ़रमाया— "क्या अल्लाह ने तुम्हें यतीम नहीं पाया, फिर उसने तुम्हें ठिकाना दिया और तुम्हें मुतलाशी पाया तो उसने तुम्हें राह दिखाई।" (93:6-7)

क़ुरआन की इस आयत में इस हक़ीक़त की तरफ़ इशारा किया गया है कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम को अपनी इब्तिदाई ज़िंदगी में जब यतीमी का तजुर्बा हुआ तो इस तजुर्बे ने आपके अंदर एहसास पैदा किया कि कोई चीज़ आपसे खोई गई है। यह एहसास आख़िरकार हक़ की तलाश की सूरत में उभरा। आप हक़ की तलाश में इतने ज़्यादा सरगर्दां हुए कि अक्सर आप मक्का के बाहर चले जाते और क़रीबी पहाड़ 'हिरा' की एक गुफ़ा में तन्हाई की हालत में ज़िंदगी की हक़ीक़त के बारे में सोचते रहते और दुआ करते रहते। इस तरह आप हक़ की तलाश में सरगर्म थे कि ख़ुदा ने 610 ई० की एक रात को आपके पास फ़रिश्ता भेजा। फ़रिश्ते ने आपको बताया कि ख़ुदा ने आपको अपने पैग़ंबर की हैसियत से चुन लिया है। इसके बाद आप पर क़ुरआन वक़्फ़े-वक़्फ़े से उतरता रहा। 23 साल की मुद्दत में वह मुकम्मल हुआ।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम को ख़ुदा की तरफ़ से यह मिशन दिया गया कि वह लोगों को तौहीद का पैग़ाम पहुँचाएँ यानी यह कि ख़ुदा सिर्फ़ एक है और इंसान को चाहिए कि वह हर ऐतबार से ख़ुदारुख़ी ज़िंदगी (God-oriented life) गुज़ारे। यही इंसान की निजात का रास्ता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम अपनी इब्तिदाई ज़िंदगी में एक ताजिर थे। ताजिर की हैसियत से उनकी तसवीर ऐसी बनी कि लोग उन्हें 'अल-अमीन' (Honest Person) कहने लगे। इस तरह आप मक्का में एक बा-इज़्ज़त शख़्स बन गए। इसी का यह नतीजा था कि पैग़ंबरी मिलने के बाद जब आपने मक्का के एक टीले 'सफ़ा' पर चढ़कर लोगों को पुकारा तो लोग आपकी बात सुनने के लिए वहाँ जमा हो गए।

यह नबूव्वत की हैसियत से आपका पहला ख़िताब था। इस ख़िताब में आपने लोगों को बताया कि मौत के बाद हर एक को या तो जन्नत मिलेगी या जहन्नुम। इसलिए तुम लोग मौत से पहले के ज़माने में मौत के बाद के ज़माने की तैयारी करो।

मक्का में उस वक़्त बुतपरस्ती का रिवाज था। लोग बुतपरस्ती में कंडीशंड हो चुके थे। इसलिए इब्तिदाई ज़माने की इस तक़रीर का लोगों के ऊपर कोई असर नहीं हुआ। लोग असर लिये बग़ैर वापस चले गए। आपके चचा अब्दुल उज़्ज़ा (अबू लहब) ने मनफ़ी रद्द-ए-अमल ज़ाहिर करते हुए कहा—

"तुम्हारा बुरा हो, क्या तुमने यही कहने के लिए हमें बुलाया था।" (मुस्तख़रज अबी अवाना, हदीस नं० 262)

मक्का अरब का मरकज़ी शहर था। यहाँ क़बीला-ए-क़ुरैश के लोग रहते थे। क़ुरैश को काबा की सत्ता हासिल थी, जो कि पूरे अरब का मज़हबी मरकज़ था। इस बिना पर क़ुरैश को पूरे मुल्क में सरदारी का मुक़ाम हासिल हो गया था। क़ुरैश ने मक्का में दार-उल-नदवा (council) क़ायम कर रखा था। दार-उल-नदवा गोया क़बाइली पार्लियामेंट थी। क़ुरैश के सीनियर अफ़राद दार-अल-नदवा के मेंबर होते थे। यहाँ तमाम अहम उमूर के फ़ैसले किए जाते थे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के दादा अब्दुल मुत्तलिब दार-अल-नदवा के मुमताज़ मेंबरों में से एक थे।

आम रिवाज के मुताबिक़, एक हौसलामंद लीडर के लिए पहला टार्गेट यह था कि वह दार-उल-नदवा का मेंबर बनने की कोशिश करे, जो गोया उस वक़्त के अरब में सियासी ताक़त के मरकज़ की हैसियत रखता था। बज़ाहिर उसके बग़ैर अरब या मक्का में कोई बड़ा काम नहीं हो सकता था, लेकिन पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने दार-उल-नदवा में दाख़िले की कोई कोशिश नहीं की। हत्ता कि उन्होंने यह मुतालिबा भी नहीं किया कि अपने दादा अब्दुल मुत्तलिब की ख़ाली सीट उन्हें दी जाए।

दार-उल-नदवा के मुआमले में पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने वह पुर-अमन तरीक़ा इख़्तियार किया, जिसे 'स्टेटस को-इज़्म' (status quoism) कहा जाता है यानी सूरत-ए-हाल से टकराव न करना, बल्कि जो सूरत-ए-हाल है, उसे उसी तरह क़बूल कर लेना, जैसे कि वह है; मगर पैग़ंबर-ए-इस्लाम का 'स्टेटस को-इज़्म' सादा तौर पर सिर्फ़ 'स्टेटस को-इज़्म' न था, बल्कि वह 'मुस्बत स्टेटस को-इज़्म' (positive-status quoism) था। 'मुस्बत स्टेटस -इज़्म' यह है कि आदमी वक़्त के निज़ाम से टकराव न करे, बल्कि वह यह करे कि वक़्त के

निज़ाम में मौजूदा मवाक़े को दरयाफ़्त करके उसे इस्तेमाल करे। इस तरीक़-ए-कार को फ़ॉर्मूला की ज़बान में इस तरह कहा जा सकता है—

Ignore the problem, avail the opportunities.

'पॉज़िटिव स्टेटस को-इज़्म' का यह तरीक़ा एक इंतिहाई हाकीमाना तरीक़ा था। उसकी तरफ़ रहनुमाई पैग़ंबर-ए-इस्लाम को ख़ुद क़ुरआन की इब्तिदाई आयतों में इन अल्फ़ाज़ इस तरह दी गई— "हर मुश्किल के साथ आसानी है, हर मुश्किल के साथ आसानी है।" (94:5-6)

इस तरह पैग़ंबर-ए-इस्लाम को बताया गया कि इस दुनिया में कोई मसला कभी कुल्ली मायनों में मसला नहीं होता, बल्कि हर मसले के साथ हमेशा मवाक़े मौजूद रहते हैं। इसलिए आदमी को यह हिक्मत इख़्तियार करनी चाहिए कि वह मसाइल को नज़रअंदाज करे और मवाक़े को इस्तेमाल करे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के लिए यह तरीक़ा एक हकीमाना आग़ाज़ की हैसियत रखता था। इसका मतलब यह था कि आज जो मुमकिन है, उससे अपने अमल का आग़ाज़ करो। इस तरह कुल वह चीज़ मुमकिन हो जाएगी, जो बज़ाहिर आज नामुमकिन नज़र आती है।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम का मिशन लोगों तक तौहीद का पैग़ाम पहुँचाना था। इस लिहाज़ से आपके लिए उस वक़्त का सबसे बड़ा मसला यह था कि मक्का के मुक़द्दस इबादती मरकज़ काबा में 360 बुत रखे हुए थे। ये अरब के मुख़्तलिफ़ क़बाइल के बुत थे और मक्का के सरदारों ने इन बुतों को काबा में इसलिए रखा था, ताकि वे मक्का को मरकज़ी मुक़ाम का दर्जा दे सकें। काबा में 360 बुत का होना एक मसला (problem) था, मगर इसी के साथ इसमें एक मौक़ा (opportunity) भी छिपा हुआ था। इन बुतों की वजह से ऐसा होता था कि मक्का के लोग और मक्का के बाहर के लोग वहाँ हर रोज़ जमा होते थे। इस तरह काबा लोगों के लिए इज्तिमे का एक फ़ितरी मुक़ाम बन गया था। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने काबा में बुतों की मौजूदगी को नज़रअंदाज किया और उन बुतों की वजह से वहाँ लोगों के इज्तिमे को एक मौक़े के तौर पर इस्तेमाल किया। अब आपने यह किया कि आप रोज़ाना वहाँ जाते और लोगों से मुलाक़ात करते और उन्हें क़ुरआन की आयतें सुनाते।

क़दीम मक्का में पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने दावत का जो मज़्कूरा तरीक़ा इख़्तियार किया, वह मसलों से ख़ाली न था। मिसाल के तौर पर क़ुरआन की सूरह अल-नज्म उतरी तो हस्ब-ए-मामूल आपने यह किया कि काबा के इज्तिमे में जाकर लोगों को उसे पढ़कर सुनाया। इस सूरह में अरब के बड़े-बड़े बुतों को बे-हक़ीक़त बताया था— "भला क्या तुमने लात और उज़्ज़ा पर ग़ौर किया है और तीसरे एक और मनात पर।" (53:19-20)

इस आयत में लात, उज़्ज़ा और मनात के नाम आए हैं। ये तीनों बुत क़दीम अरब के बड़े-बड़े बुत थे। क़दीम अरबों का यह तरीक़ा था कि जब किसी मजलिस में इन बुतों का नाम आता तो वे उनके एतराफ़ के लिए कुछ ताज़ीमी (एहतराम के) अल्फ़ाज़ बोलते। चुनाँचे ऐसा हुआ कि जब पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने क़ुरआन पढ़ते हुए लात, उज़्ज़ा और मनात के नाम लिये तो वहाँ के मुशरिक हाज़िरीन ने अपने रिवाज के मुताबिक़ बुलंद आवाज़ में कहा —

'تِلْكَ الْغَرَانِيقُ الْعُلَى، وَإِنَّ شَفَاعَتَهُنَّ لَتُرْتَجَى'

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की आवाज़ में हाज़िरीन की मज़्कूरा आवाज़ मिल गई। उन्होंने समझा कि ख़ुद रसूलुल्लाह ने ये अल्फ़ाज़ कहे हैं। यह ख़बर निहायत तेज़ी से फैल गई, यहाँ तक कि यह ख़बर हब्श तक फैल गई। बहुत से लोगों ने यह समझ लिया कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने मुशरिक अरबों के इस मुतालबे को मान लिया है कि इनके जो बुत हैं, वे भी ख़ुदा की ख़ुदाई में शरीक हैं। हालाँकि यह सिर्फ़ एक ग़लतफ़हमी थी, न कि कोई वाक़या।

इस तरह मक्का में पैग़ंबर-ए-इस्लाम लोगों को मुसलसल अक़ीद-ए-तौहीद की तरफ़ बुलाते रहे। इस मक़सद के लिए वह लोगों को ख़िताब भी करते और इनफ़िरादी तौर पर उनसे मिलकर उन्हें अपना पैग़ाम पहुँचाते रहे। इस तरह एक-एक करके लोग पैग़ंबर-ए-इस्लाम के दीन में दाख़िल होते रहे, मसलन हज़रत ख़दीजा, हज़रत अबू बकर, हज़रत उमर, हज़रत उस्मान वग़ैरह। तजुर्बा बताता है कि लोग अपने मज़हबी अक़ीदे के बारे में बहुत ज़्यादा हस्सास होते हैं। चुनाँचे मक्का में पैग़ंबर-ए-इस्लाम की मुख़ालिफ़त शुरू हो गई। क़ुरैश हर तदबीर से यह कोशिश करने लगे कि आपका तौहीद का मिशन ख़त्म हो जाए। इस मुख़ालिफ़त का सबब किसी भी दर्जे में सियासी न था, वह

सिर्फ़ एतिक़ादी हस्सासियत की बिना पर था। इस मुख़ालिफ़त का सबब सिर्फ़ एतिक़ादी इख़्तिलाफ़ था, न कि कोई सियासी ख़तरा।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम के इस इब्तिदाई दौर में आपकी बीवी ख़दीजा और आपके चाचा अबू तालिब आपके लिए गोया 'सपोर्ट सिस्टम' बने हुए थे। ऐलान-ए-नबूव्वत के दसवें साल इन दोनों का इंतक़ाल हो गया। क़दीम क़बाइली रिवाज के मुताबिक़ अब आपको ज़रूरत थी कि आप किसी और को तलाश करें, जो आपको अपनी पनाह में ले ले, ताकि आप अपना मिशन ब-दस्तूर जारी रख सकें।

पनाह लेने के लिए पहले आपने मक्का में कोशिश की। काबा की ज़ियारत के लिए जो क़बाइली सरदार मक्का आते थे, उनसे इस मक़सद के लिए मुलाक़ातें की, मगर उनमें से कोई शख़्स तैयार नहीं हुआ। आख़िरकार आपने यह फ़ैसला किया कि मक्का से 75 किलोमीटर दूर वाक़ेअ शहर ताइफ़ जाएँ और वहाँ के सरदारों से पनाह तलब करें। अरब रिवाज के मुताबिक़ यह कोई नई बात न थी, मगर ताइफ़ के सरदार जो ख़ुद भी बुतों की परस्तिश करते थे, वे तौहीद के पैग़ंबर को पनाह देने के लिए तैयार नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपने शहर के बच्चों को उकसाया कि वे आपको पत्थर मारकर शहर के बाहर कर दें।

आप ताइफ़ से बाहर एक बाग़ में रात गुज़ारने के लिए पनाह लिये हुए थे। रिवायत के मुताबिक़ उस वक़्त ख़ुदा ने पहाड़ों का फ़रिश्ता (मलिक अल-जबाल) को आपके पास भेजा। मलिक अल-जबाल ने आपसे कहा कि ताइफ़ वालों ने आपके साथ जो सुलूक किया, उसे ख़ुदा ने देखा। अब अगर आप इजाज़त दें तो मैं ताइफ़ के एतराफ़ में वाक़ेअ पहाड़ों को एक-दूसरे में मिला दूँ, ताकि ताइफ़ के लोग इसमें दबकर ख़त्म हो जाएँ, मगर पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने कहा— "नहीं, ताइफ़ की मौजूदा नस्ल ने अगरचे मेरी बात को मानने से इनकार कर दिया है, लेकिन मुझे उम्मीद है कि ताइफ़ की अगली नस्लें मेरी बात को मानेंगी और ख़ुदा के रास्ते पर चलेंगी।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 3,231)

पैग़ंबर-ए-इस्लाम ताइफ़ से वापस होकर दोबारा मक्का पहुँचे तो क़ुरैश का ज़ुल्म और ज़्यादा बढ़ गया। उन्होंने दार-उल-नदवा में मशवरे के बाद

यह फ़ैसला किया कि आपको क़त्ल कर दें। इस फ़ैसले में मक्का के तमाम क़बाइल शरीक हो गए। उस वक़्त मक्का और एतराफ़-ए-मक्का में तक़रीबन दो सौ आदमी पैग़ंबर-ए-इस्लाम के पैग़ाम को मानकर आपके साथी बन चुके थे, मगर यह तादाद क़ुरैश के मुक़ाबले में आपकी हिमायत के लिए नाकाफ़ी थी। चुनाँचे आपने यह फ़ैसला किया कि आप मक्का छोड़कर अरब के दूसरे शहर मदीना चले जाएँ, जो मक्का से तक़रीबन तीन सौ मेल के फ़ासले पर वाक़ेअ था।

मदीना में इस्लाम का दाख़िला

पैग़ंबर-ए-इस्लाम अभी मक्का में थे कि आपने अपने दो साथियों को मक्का से मदीना के लिए रवाना किया। यह लोग वहाँ इसलिए गए थे, ताकि आपका पैग़ाम मदीना वालों को पहुँचाएँ। मदीना वालों की ज़बान अरबी थी जिस तरह मक्का वालों की ज़बान अरबी थी। चुनाँचे उन लोगों ने यह किया कि क़ुरआन के मुख़्तलिफ़ हिस्सों को पढ़कर उन्हें सुनाने लगे। इसीलिए उनका नाम मुक़्री पड़ गया (म-आरिफ़ अल-सहाबा, अबू नुएम अल-असफ़हानी, जिल्द नं०5, सफ़हा 2,556)। अरबी ज़बान में मुक़्री के मायने हैं पढ़कर सुनाने वाला।

वाक़यात बताते हैं कि मक्का के बरअक्स मदीना में पैग़ंबर-ए-इस्लाम का पैग़ाम तेज़ी से फैलने लगा। मदीना के तक़रीबन हर घर में ऐसे अफ़राद पैदा हो गए, जिन्होंने बुतों की परस्तिश छोड़ दी और पैग़ंबर-ए-इस्लाम के दीन को इख़्तियार कर लिया। मक्का में मुख़ालिफ़त और मदीना में मुवाफ़िक़त के ये दो मुख़्तलिफ़ तजुर्बे क्यों हुए? इसका एक मालूम सबब था, वह यह कि मक्का अरब के रेगिस्तानी इलाक़े में वाक़ेअ था। यहाँ खेती वग़ैरह मौजूद नहीं थी। मक्का वालों की रोज़ी बड़ी हद तक बुतपरस्ती के कल्चर पर निर्भर थी। काबा उस ज़माने में पूरे अरब में बुतपरस्ती का मरकज़ बना हुआ था। इस बिना पर ऐसा हुआ था कि अरब के तमाम क़बाइल के लोग साल भर यहाँ आते। इस तरह बुतपरस्ती में मक्का वालों के लिए एक इक़्तिसादी क़द्र (commercial value) पैदा हो गई थी। गोया कि क़दीम मक्का में बुतों को वही हैसियत

हासिल हो गई थी, जिसे मौजूदा ज़माने में ‘टूरिस्ट इंडस्ट्री’ कहा जाता है। इस बिना पर मक्का के लोग डरते थे कि अगर अरब से बुतपरस्ती का ख़ात्मा हो जाएगा तो उनकी ‘टूरिस्ट इंडस्ट्री’ ख़त्म हो जाएगी।

अहल-ए-मदीना का मुआमला इससे मुख़्तलिफ़ था। मदीना अरब के एक ऐसे इलाक़े में वाक़ेअ था, जहाँ पानी की कमी नहीं थी। इस बिना पर वहाँ खेती और बाग़बानी का काफ़ी रिवाज था। यहाँ के लोगों के लिए यह डर न था कि अगर बुतपरस्ती का ख़ात्मा हो जाएगा तो उनकी रोज़ी का ज़रिया ख़त्म हो जाएगा, क्योंकि बुतपरस्ती उनकी रोज़ी का ज़रिया ही न थी।

इस बिना पर ऐसा हुआ कि तौहीद का मज़हब अहल-ए-मक्का के लिए इब्तिदाई ज़माने में क़ाबिल-ए-क़बूल न हो सका, मगर अहल-ए-मदीना इस क़िस्म की नफ़्सियात से ख़ाली थे। बुतपरस्ती का ख़ात्मा उनके नज़दीक सिर्फ़ एक मज़हबी कल्चर का ख़ात्मा था, न कि उनके मआशी ज़रिये का ख़ात्मा। चुनाँचे मदीने में पैग़ंबर-ए-इस्लाम का पैग़ाम तेज़ी से फैल गया।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की मक्का से मदीना की तरफ़ हिजरत कोई सादा वाक़या न था। यह दरअसल टकराव के तरीक़े को छोड़कर अमन के तरीक़े को इख़्तियार करना था। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के इस उसूल को आपकी अहलिया हज़रत आयशा ने इस तरह अल्फ़ाज़ बयान किया— “पैग़ंबर-ए-इस्लाम को जब भी दो में से एक तरीक़े को चुनना होता तो आप हमेशा यह करते कि मुश्किल के मुक़ाबले में आसान तरीक़े को इस्तेमाल फ़रमाते।” (सही अल-बुख़ारी, नं० 6,786)

इस मुआमले की एक वाज़ेह मिसाल मक्का के तेरह साला क़ियाम के आख़िरी दिनों में आपके लिए दो में से एक को चुनना था— या तो क़ुरैश से जंगी टकराव करें और या फिर ख़ामोशी के साथ पुर-अमन तौर पर मक्का से निकलकर मदीना चले जाएँ। उस वक़्त के हालात में पहला रास्ता मुश्किल रास्ता इंतख़ाब था। इसके मुक़ाबले में दूसरा रास्ता यानी ख़ामोशी से मदीना चले जाना एक आसान रास्ता था। चुनाँचे पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अपने उसूल के मुताबिक़ उसे ले लिया, जो आसान था और उसे छोड़ दिया, जो मुश्किल था।

मक्का से मदीना का यह सफ़र तक़रीबन पाँच सौ किलोमीटर का सफ़र था। यह पूरा सफ़र ऊँट पर गुज़रा, मगर चूँकि आपको मालूम था कि मक्का के लोग आपको पकड़ने के लिए आपका पीछा कर रहे हैं, इसलिए आपने उनसे बचाव के लिए मुख़्तलिफ़ तरीक़े अपनाए, मसलन मक्का से रात के वक़्त ख़ामोशी से रवानगी। सीधे मदीना सफ़र करने के बजाय मुख़ालिफ़ सिम्त की एक ग़ैर-आबाद गुफ़ा में तीन दिन छुपे रहना। आम रास्ते के बजाय नए रास्ते से सफ़र करना वग़ैरह-वग़ैरह।

हिजरत के इस सफ़र में कई ऐसे वाक़यात पेश आए, जो बताते हैं कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम का मिज़ाज क्या था, मसलन एक मुक़ाम पर आपको दो शख़्स मिले। वे दोनों आपस में भाई थे। आपने उनसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? उन्होंने कहा कि हमारे क़बीले ने हम दोनों का एक ही नाम रखा है। वह है दो बे-इज़्ज़त (अल-मुहानान) आदमी। आपने फ़रमाया कि नहीं, तुम दोनों बा-इज़्ज़त (अल-मुक्रामान) आदमी हो। (मुसनद अहमद, हदीस नं० 16,691)

यह तरीक़ा आपके उसूल-ए-तर्बियत का एक हिस्सा था। आप जानते थे कि इंसान की शख़्सियत की तामीर मुस्बत अंदाज़ में की जाए, इसलिए आपने उनका नाम बदल दिया। इस तरह उन्हें यह नफ़्सियाती तरग़ीब दी कि वे अपने आपको आला इंसानियत के रुख़ पर तरक़्क़ी दें। इसी तरह बाद के ज़माने में आपकी साहबज़ादी हज़रत फ़ातिमा का निकाह हज़रत अली बिन अबी तालिब से हुआ। उनके यहाँ पहला लड़का पैदा हुआ तो पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अली से पूछा कि तुमने बेटे का नाम क्या रखा। उन्होंने कहा— हर्ब (जंग)। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने कहा— यह नाम दुरुस्त नहीं। इसके बाद आपने उसका नाम हसन रखा। (अल- मोअज्जम-उल-कबीर, अल-तबरानी, हदीस नं० 2,777)

जो लोग 'अल-रिसाला' को उर्दू से हिंदी में करने के काम में हिस्सा लेना चाहते हैं और थोड़ी-बहुत हिंदी-उर्दू पढ़ना जानते हैं और थोड़ा-बहुत कंप्यूटर पर काम करना जानते हैं तो ईमेल khurram@cpsglobal.org पर राब्ता क़ायम करें।

मदनी ज़िंदगी

622 ई० से पैग़ंबर-ए-इस्लाम की मदनी ज़िंदगी का आग़ाज़ होता है। आपका हिजरत करके मदीना पहुँचना कोई सादा बात न थी। इससे पहले मक्का की तेरह साला पैग़ंबराना ज़िंदगी में आपको निहायत तल्ख़ तजुर्बे पेश आए थे। आपको मुसलसल सताया गया, आपके साथियों को मारा-पीटा गया, आपका और आपके ख़ानदान का बायकॉट किया गया, आपको इतनी शदीद मुसीबतों में मुब्तला किया गया कि आप और आपके सौ से ज़्यादा साथी अपने वतन और अपनी जायदाद को छोड़कर मक्का से मदीना आ गए। यहाँ उन्हें अपने घर और अपने अज़ीज़ों से महरूम होकर नए सिरे से अपनी ज़िंदगी की तामीर का मुश्किल काम करना था।

ऐसी हालत में यह होना चाहिए था कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम का दिल शिकायत और एहतिजाज़ से भरा हुआ हो और वह मदीना पहुँचते ही मक्का वालों के ख़िलाफ़ मनफ़ी बातें कहना शुरू कर दें, मगर मुआमला इसके बरअक्स हुआ। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने मदीना पहुँचकर मदीना वालों के सामने जो पहली तक़रीर की, वह अब भी सीरत की किताबों में मौजूद है। सीरत इब्ने-हिशाम में उसे 'मदीना का पहला ख़ुतबा' के उनवान से ज़िक्र किया गया है।

"तुममें से जो अपने आपको जहन्नुम की आग से बचाने की ताक़त रखता हो, ख़्वाह खजूर के एक टुकड़े के ज़रिये क्यों न हो, वह करे।" (सीरत इब्ने-हिशाम, जिल्द 1, सफ़हा 501)

यह कोई सादा बात न थी। यह दरअसल पीसफ़ुल एक्टिविज़्म (peaceful activism) की क़ीमत थी। उस वक़्त के हालात में बिला शुबहा यह एक मुश्किल काम था। यह अपने मनफ़ी जज़्बात को मुस्बत जज़्बात में कन्वर्ट करना था, मगर यही पीसफ़ुल एक्टिविज़्म की क़ीमत है। इस क़ीमत को अदा किए बग़ैर कोई शख़्स पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के उसूल पर क़ायम नहीं रह सकता। इंसानी नफ़्सियात का मुताला बताता है कि अमन और तशद्दुद दोनों ही अंदरूनी एहसासात का इज़्हार होते हैं। अगर आदमी के ज़हन में नफ़रत हो तो इसका इज़्हार मुतशद्दिदाना (violent) अमल की सूरत में होगा और अगर

उसके ज़हन में मुहब्बत हो तो इसका इज़्हार हमेशा पुर-अमन तरीक़-ए-अमल की सूरत में ज़ाहिर होगा। ऐसी हालत में पीसफ़ुल एक्टिविज़्म का नाम लेना कोई सादा बात नहीं, वह एक क़ुर्बानी का तक़ाज़ा करता है। वह क़ुर्बानी यह है कि आदमी नफ़रत के अस्बाब के बावजूद फ़रीक़-ए-सानी से नफ़रत न करे, वह अपने दिमाग़ को नफ़रत वाली बातों से पूरी तरह ख़ाली रखे।

इसका मतलब यह है कि जो आदमी पुर-अमन तरीक़ेकार पर अमल करना चाहता हो, उसे सबसे पहले ख़ुद अपने ज़हन को एतदाल (moderation) पर क़ायम रखना होगा। उसे यकतरफ़ा तौर पर यह करना होगा कि फ़रीक़-ए-सानी उसे ग़ुस्सा दिलाए, मगर वह हरगिज़ ग़ुस्सा न हो। इस क़ीमत को अदा किए बग़ैर कोई शख़्स पुर-अमन तरीक़-ए-कार के उसूल को इख़्तियार नहीं कर सकता।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने मालूम तारीख़ में पहली बार पुर-अमन एक्टिविज़्म का मुकम्मल नमूना पेश किया। इसका सबब यह था कि आपने यकतरफ़ा एतिदालपसंदी की मज़्कूरा क़ीमत अदा की। आपके साथ फ़रीक़-ए-सानी की तरफ़ से हर क़िस्म की ज़्यादती की गई, मगर आप इन ज़्यादतियों से ऊपर उठकर सोचते रहे। उनकी ज़्यादतियों को नज़रअंदाज करके आपने मुस्बत अंदाज़ में अपने अमल को बनाया।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की यह तक़रीर बताती है कि आप मुकम्मल मायनों में एक अमनपसंद इंसान थे। कोई बड़े से बड़ा नाख़ुशगवार वाक़या आपके ज़हनी सुकून (peace of mind) को दरहम-बरहम नहीं कर सकता था। आपने अपने ज़हन की सतह पर एक ऐसी बुलंद चीज़ पा ली थी कि इसके बाद हर दूसरी चीज़ आपको ग़ैर-अहम मालूम होती थी। आप कामिल मायनों में एक मुस्बत ज़हन के इंसान थे। आपका दिमाग़ गोया एक ऐसा कारख़ाना था, जिसमें दाख़िल होकर एक नेगेटिव आइटम भी पॉज़िटिव आइटम बन जाता था। आपको अपनी ज़िंदगी में जब भी कोई नाख़ुशगवार तजुर्बा पेश आता तो आपका ज़हन फ़ौरी तौर पर डिफ़्यूज़ (diffuse) करके उसे एक मुस्बत एहसास में तब्दील कर लेता। इसका नतीजा यह था कि आपके हाफ़िज़े तक जब कोई मनफ़ी एहसास पहुँचता तो वह बदलकर मुस्बत एहसास बन चुका होता था। आपकी शख़्सियत कामिल मायनों में एक मुस्बत शख़्सियत थी। आप मनफ़ी

हालात में भी मुस्बत ज़हन के साथ रहने की आला सलाहियत रखते थे। आप तशद्दुद के वाक़यात को बदलकर अमन का वाक़या बनाने की ग़ैर-मामूली इस्तिदाद रखते थे।

622 ई० में जब आप मदीना पहुँचे, उस वक़्त मदीना में मुसलमानों के साथ मुशरिकीन और यहूद भी मौजूद थे। गोया कि उस वक़्त का मदीना एक मल्टी रिलीजस सोसाइटी की हैसियत रखता था। ऐसे माहौल में लोग किस तरह पुर-अमन तौर पर रहें, आपने उसका एक कामयाब फ़ॉर्मूला दरयाफ़्त किया। यह फ़ॉर्मूला इस उसूल पर मबनी था कि एक की पैरवी करो और सबका एहतराम करो।

Follow one and respect all.

उस वक़्त के मदीना में तादाद के ऐतबार से मुसलमानों को अक्सरियत हासिल हो चुकी थी। इसलिए उस वक़्त के मदीना में जो इब्तिदाई रियासत बनी, उसके सदर ख़ुद पैग़ंबर-ए-इस्लाम थे। आपने सदर-ए-रियासत की हैसियत से एक डिक्लेरेशन (declaration) जारी किया, जो तारीख़ में सहीफ़ा-ए-मदीना या मीसाक़-ए-मदीना के नाम से मशहूर है। इस डिक्लेरेशन में बताया गया था कि मुस्लिम, मुशरिक और यहूद तीनों को यह हक़ होगा कि वे अपने ज़ाती मुआमलात को ख़ुद अपने मज़हब और रीति-रिवाज के मुताबिक़ तय करें। अलबत्ता जहाँ तक इज्तिमाई इख़्तिलाफ़ की बात है, उन्हें अल्लाह और उसके रसूल के तरीक़े के मुताबिक़ तय किया जाएगा। (सीरत इब्ने-हिशाम, जिल्द 1, सफ़हा 503)

यह मल्टी रिलीजस या मल्टी कल्चरल समाज में अमन क़ायम करने का वाहिद अमली उसूल है। इस उसूल का मतलब यह है कि अपने अपने दायरे में हर एक अपने तरीक़े की पैरवी करने में आज़ाद हो। जहाँ तक इज्तिमाई मुआमलात का ताल्लुक़ है यानी वह मुआमलात जिनमें राय एक-दूसरे से मुख़्तलिफ़ हो जाती हैं, वहाँ मरकज़ी इंतिज़ामिया की इत्तबाअ करना। इस तरीक़े को दूसरे अल्फ़ाज़ में पुर-अमन डिफरेंस मैनेजमेंट (peaceful difference management) कहा जा सकता है। यह एक हक़ीक़त है कि हर समाज में हमेशा फ़र्क़ और इख़्तिलाफ़ पाया जाता है, ख़्वाह यह समाज वाहिद मज़हबी समाज हो या कसीर मज़हबी समाज। इस फ़र्क़ को तस्लीम किया जा सकता

है, मगर उसे मिटाया नहीं जा सकता। ऐसे हालात में किसी समाज में अमन क़ायम करना सिर्फ़ बक़ा-ए-बाहम (co-existence) के उसूल पर मबनी है। इस मुआमले में दूसरा कोई इंतख़ाब मुमकिन नहीं।

मदीना पहुँचकर आपने जो सबसे पहला काम किया, वह यह था कि आपने वहाँ एक मस्जिद बनाई और उस मस्जिद में पाँच वक़्त की नमाज़ का निज़ाम क़ायम किया। इस नमाज़ का एक पहलू यह था कि वह ख़ुदा की इबादत का मुनज़्ज़म तरीक़ा था। इसका दूसरा पहलू यह था कि इंसान के अंदर वह सलाहियतें पैदा हों, जिनके ज़रिये वह समाज के अंदर पुर-अमन तौर पर रह सके। चुनाँचे आपने नमाज़ का जो तरीक़ा मुक़र्रर किया, उसके ख़ात्मे पर तमाम नमाज़ियों को अपना चेहरा दाएँ और बाएँ फेरकर यह कहना था—

“अस्सलामु अलैकुम व-रहमतुल्लाह, अस्सलामु अलैकुम व-रहमतुल्लाह।”

इस तरह गोया नमाज़ी सारी दुनिया के इंसानों को मुख़ातब करके यह कहता है कि ऐ लोगो, तुम्हारे ऊपर सलामती हो।

इस तरह नमाज़-ए-बा-जमाअत गोया लोगों की इस अंदाज़ में तर्बियत का ज़रिया थी कि वे अपने समाज में पुर-अमन शहरी बनकर रहें। समाज के लोगों के लिए उनके दिल में हर हाल में मुस्बत जज़्बात हों, वे दूसरों के लिए कभी मसला न बनें। उनका रवैया दूसरों के साथ इंसानी दोस्ती (human friendly) वाला रवैया हो।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम जब हिजरत करके मक्का से मदीना आ गए तो यह टकराव का ख़ात्मा न था, बल्कि यह टकराव के नए दौर का आग़ाज़ बन गया। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने ख़ुद तो यह क़ुर्बानी दी कि जंग से बचने के लिए अपने वतन मक्का को छोड़ दिया और मदीना जाकर आबाद हो गए, मगर अमलन यह हुआ कि मदीना आपके मिशन के लिए एक ज़रख़ेज़ इलाक़ा साबित हुआ। यहाँ के लोग तेज़ी से आपके दीन में दाख़िल हो गए, यहाँ तक कि अहल-ए-मदीना की अक्सरियत आपकी साथी बन गई।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की हिजरत के बाद यह हुआ कि मक्का और मक्का के आस-पास दूसरे मुसलमान भी अपने मुक़ामात को छोड़कर मदीना आ गए। इस तरह मदीना पैग़ंबर-ए-इस्लाम के मिशन का एक मज़बूत मरकज़ बन गया।

यहाँ मदीना के अंदर और मदीना के बाहर, दोनों इलाक़ों के लोग जमा हो गए। यह मक्का वालों के लिए गोया एक वार्निंग थी। वह अपने तौर पर यह सोचने लगे कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम मदीना में अपने अफ़राद को इकट्ठा करके एक बड़ी क़ुव्वत बनाएँगे और मक्का को वापस लेने के लिए मक्का पर हमला कर देंगे। इसलिए मक्का वालों ने यह मंसूबा बनाया कि मदीना में पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ताक़त को तोड़कर उसे हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया जाए।

इस मक़सद के लिए मक्का वालों ने अवामी चंदे से पचास हज़ार दीनार इकट्ठा किए और तैयारी शुरू कर दी, यहाँ तक कि उन्होंने मदीना पर बाक़ायदा हमले का मंसूबा बना लिया। हत्ता कि एक हज़ार की तादाद में फ़ौज लेकर रवाना हुए, ताकि मदीना की नई मुस्लिम रियासत का ख़ात्मा कर दें।

इस तरह मदनी दौर में ग़ज़्वात (लड़ाइयों) का सिलसिला शुरू हो गया। सीरत की किताबों में तक़रीबन 85 ग़ज़्वात शुमार किए गए हैं, मगर ये ग़ज़्वात फ़रीक़-ए-सानी की तरफ़ से ग़ज़्वात थे और पैग़ंबर-ए-इस्लाम की तरफ़ से ऐराज़ (avoidance)। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की पॉलिसी यह थी कि फ़रीक़-ए-सानी के जंगी इक़दाम का मुक़ाबला पुर-अमन तदबीरों से करें। इस पुर-अमन तदबीर के लिए अमनपसंद इंसानों की एक तर्बियतयाफ़्ता टीम दरकार थी। अस्हाब-ए-रसूल ने यही काम किया। चुनाँचे तशद्दुद का मुक़ाबला अमन के ज़रिये करने की तदबीर इस तरह कामयाब हुई कि बीस साल की मुख़्तसर मुद्दत में पूरा अरब इस्लाम में दाख़िल हो गया।

इस पुर-अमन तदबीरी मुहिम का एक ख़ास जुज़ यह था कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने अरब के तमाम क़बाइल से समझौते कर लिये और तमाम क़बाइल को अमन का पाबंद बना लिया। यह एक नया तरीक़ा था, जिसे समझौता डिप्लोमेसी कहा जा सकता है। उन्हीं तदबीरों का नतीजा यह था कि अरब जैसे जंगजू मुल्क में मुख़्तसर मुद्दत के अंदर एक ऐसा इंक़लाब आ गया, जिसे बिला शुबहा एक ग़ैर-ख़ूनी इंक़लाब (bloodless revolution) कहा जा सकता है।

सब्र का फ़लसफ़ा

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की तालीमात में सब्र (patience) को बहुत ज़्यादा अहमियत दी गई है। क़ुरआन में तक़रीबन एक सौ दस आयतें हैं, जिनमें सब्र के अल्फ़ाज़ को इस्तेमाल किया गया है, यहाँ तक कि सब्र ही पर कामयाबी का मदार रखा गया है। चुनाँचे इरशाद हुआ है कि ऐ लोगो! सब्र करो, ताकि तुम फ़लाह पाओ (आल-ए-इमरान, 3:200)। इसी तरह फ़रमाया कि इमामत या लीडरशिप में कामयाबी का राज़ सब्र है। (अस-सजदा, 32:24)

इसी हक़ीक़त को पैग़ंबर-ए-इस्लाम की एक लंबी हदीस इन अल्फ़ाज़ में इस तरह आई हैं— "जान लो कि कामयाबी सब्र के साथ जुड़ी हुई है।" (मुसनद अहमद, हदीस नं० 2,803)

सब्र नहीं तो कामयाबी भी नहीं। कामयाबी का दरख़्त हमेशा सब्र की ज़मीन पर उगता है। तारीख़ बताती है कि दुनिया के तमाम पैसिफिस्ट (pacifist) या पीसफ़ुल एक्टिविस्ट (peaceful activist) अपने मक़सद को हासिल करने में नाकाम रहे। इसका मुश्तर्का सबब यह है कि उन्होंने अमन को दरयाफ़्त किया, मगर वे सब्र को दरयाफ़्त न कर सके। हालाँकि साबिराना रविश के बग़ैर पुर-अमन तहरीक को चलाना मुमकिन नहीं।

आम तौर पर यह होता है कि लोग किसी को अपना दुश्मन क़रार देते हैं और इसके बाद पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के उसूल पर उसके ख़िलाफ़ तहरीक चलाते हैं। जैसा कि नेल्सन मंडेला ने साउथ अफ़्रीक़ा में किया। उन्होंने साउथ अफ़्रीक़ा के अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाई और फिर कहा कि हम उन्हें साउथ अफ़्रीक़ा से निकालने के लिए पीसफ़ुल तहरीक चलाएँगे। हालाँकि दोनों एक-दूसरे की नफ़ी हैं। यही वजह है कि नेल्सन मंडेला की तहरीक कामयाब न हो सकी। किसी गिरोह के मुक़ाबले में पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के उसूल पर तहरीक चलाने के लिए ज़रूरी है कि आपके दिल में उसके ख़िलाफ़ मनफ़ी जज़्बात न हों। इसके मुक़ाबले में आप मुकम्मल तौर पर मुस्बत नफ़्सियात के हामिल हों। यही वाहिद बुनियाद है, जिसके ऊपर पीसफ़ुल एक्टिविज़्म की सरगर्मियाँ जारी हो सकती हैं। आपके मुक़ाबले में जो गिरोह हैं, उनके लिए

आपके दिल में अगर मुस्बत जज़्बात न हों तो आप कभी अपने पुर-अमन मिशन में कामयाब नहीं हो सकते।

अमलन यह होता है कि एक गिरोह दूसरे गिरोह के मुक़ाबले में पुर-अमन तरीक़-ए-कार की बुनियाद पर एक तहरीक उठाता है, लेकिन फ़रीक़-ए-सानी की ख़याली या हक़ीकी ज़्यादतियों का एहसास फ़रीक़-ए-अव्वल के ख़िलाफ़ उसके दिल में नफ़रत डाल देता है। यह नफ़रत धीरे-धीरे तशद्दुद की सूरत इख़्तियार कर लेती है और अगर तशद्दुद के ज़रिये मतलूब कामयाबी न मिल रही हो तो फ़रीक़-ए-अव्वल के दिल में फ़रीक़-ए-सानी के ख़िलाफ़ नफ़रत का तूफ़ान उसे इस हद तक ले जाता है कि वह उसके ख़िलाफ़ हर मुमकिन तबाहकुन कार्रवाई शुरू कर दे, यहाँ तक कि उसे मिटाने के लिए इस क़िस्म की भयानक कार्रवाई करने लगे जिसे मौजूदा ज़माने में ख़ुदकुश बमबारी (suicide bombing) कहते हैं।

पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के सिलसिले में यह बात ग़ालिबन पूरी तारीख़ में सिर्फ़ पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी में मिलती है। दूसरे मुस्लिहीन की तरह उन्हें भी फ़रीक़-ए-सानी की तरफ़ से सख़्त क़िस्म की ज़्यादतियों का सामना करना पड़ा, मगर आपने कभी उनके ख़िलाफ़ नफ़रत की ज़बान इस्तेमाल नहीं की। अपने साथियों को भी आप हमेशा नफ़रत के एहसास से बचाने की कोशिश करते रहे। आपकी ज़िंदगी में इस तरह की मिसालें कसरत से हैं।

मिसाल के तौर पर मक्का में पैग़ंबर-ए-इस्लाम के साथियों का एक ख़ानदान था, जिसे 'आल-ए-यासिर' कहा जाता था। यह एक कमज़ोर ख़ानदान था, चुनाँचे आपके ताक़तवर मुख़ालिफ़ीन ने उन्हें मारना-पीटना शुरू किया और कहा कि पैग़ंबर का साथ छोड़ दो। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस मंज़र को देखा तो आपने ज़्यादती करने वालों के ख़िलाफ़ नफ़रत का कोई कलिमा नहीं कहा, बल्कि यह कहा—"ए आल-ए-यासिर के घरवालो! सब्र करो, क्योंकि तुम्हारे लिए जन्नत का वादा है।" (मुस्तदरक अल-हाकिम, हदीस नं० 5,646)। जन्नत को सब्र का इनाम बताकर आपने अपने साथियों को इसके लिए आमादा किया कि वे किसी भी ज़्यादती पर मुश्तइल न हों। वे किसी भी हाल में फ़रीक़-ए-सानी के ख़िलाफ़ अपने दिल में मनफ़ी जज़्बात की परवरिश न करें।

यह पैग़ंबर-ए-इस्लाम की पॉलिसी का निहायत अहम पहलू था, जो आपने ख़ुदा की रहनुमाई के मुताबिक़ इख़्तियार की यानी मुख़ालिफ़ों की हर ज़्यादती पर सब्र करना। क़ुरआन में इस सिलसिले में वाज़ेह हिदायात दी गई हैं, मसलन नबियों की ज़बानी यह कहा गया है—

وَلَنَصْبِرَنَّ عَلَى مَا آذَيْتُمُونَا

"और जो तकलीफ़ तुम हमें दोगे, हम उस पर सब्र ही करेंगे।"

यह सब्र कोई सादा बात न थी। इसका मतलब यह था कि फ़रीक़-ए-सानी की ज़ालिमाना कार्रवाई के बावजूद मुस्बत सोच पर क़ायम रहना अपने आपको इससे बचाना हैं कि अपने ज़हन में फ़रीक़-ए-सानी की मनफ़ी तस्वीर बन जाए, क्योंकि फ़रीक़-ए-अव्वल के दिल में अगर फ़रीक़-ए-सानी की मनफ़ी तस्वीर बन जाए तो फ़रीक़-ए-अव्वल कभी फ़रीक़-ए-सानी के साथ पुर-अमन तरीक़-ए-कार के उसूल पर क़ायम नहीं रह सकता। सब्र का उसूल फ़रीक़-ए-अव्वल को इससे बचाता है कि इसका ज़हन फ़रीक़-ए-सानी के बारे में ग़ैर-मोतदिल हो जाए। पुर-अमन तरीक़-ए-कार (peaceful activism) दरअसल एतिदालपसंद (modest) ज़हन का इज़्हार है। ग़ैर-मोतदिल या मनफ़ी ज़हन कभी पुर-अमन तरीक़-ए-कार को कामयाबी के साथ जारी नहीं रख सकता। सब्र का यह उसूल दरअसल इसी एतिदाल या मुस्बत मिज़ाज की बरक़रारी की एक यक़ीनी गारंटी है।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी का मुताला बताता है कि आपके साथ मुख़ातब गिरोह की तरफ़ से मुसलसल ज़्यादतियाँ की गईं, लेकिन आप हमेशा पाबंदी के साथ सब्र के उसूल पर क़ायम रहे और अपने साथियों को उसी की नसीहत की। आपकी मजलिसों में कभी ऐसा नहीं होता था कि मुख़ालिफ़ीन के ज़ुल्म का चर्चा किया जाए। आपने कभी ऐसा नहीं किया कि मुख़ालिफ़ीन के ज़ुल्म के हवाले से उनके ख़िलाफ़ बद-दुआएँ करें। इसके बरअक्स आप हमेशा ज़ुल्म करने वालों के ख़िलाफ़ अच्छी दुआ करते थे। आपने मुख़ालिफ़ों को कभी काफ़िर या दुश्मन नहीं कहा, बल्कि हमेशा उनके बारे में इंसान का लफ़्ज़ बोलते रहे। इस मुआमले की एक इंतिहाई मिसाल यह है कि एक बार आपके मुख़ालिफ़ों ने पत्थर मारकर आपको ज़ख़्मी कर

दिया, उस वक़्त आपकी ज़बान से यह अल्फ़ाज़ निकले— "ख़ुदाया! मेरी क़ौम को हिदायत दे, क्योंकि वे जानते नहीं।" (शुएब अल-ईमान लिल-बैहक़ी, हदीस नं० 1,375)

यकतरफ़ा सब्र और ख़ैरख़्वाही का तरीक़ा जो आपने अरब में इख़्तियार फ़रमाया, वह इसीलिए था कि फ़रीक़-ए-सानी के बारे में आप या आपके साथियों के दिल में शिकायत और नफ़रत की नफ़्सियात पैदा न होने पाए, क्योंकि जो ज़हन शिकायत और नफ़रत लिये हुए हो, वह इस्लाह का काम दुरुस्त तौर पर नहीं कर सकता।

ख़ामोश तब्लीग़

ऐसी हालत में पैग़ंबर-ए-इस्लाम के लिए दो रास्तों में से एक का चुनाव था। एक यह कि लोगों को खुले तौर पर तौहीद की तरफ़ बुलाएँ और खुले तौर पर शिर्क को ग़लत क़रार दें। आपके लिए दूसरा रास्ता यह था कि आप ख़ामोशी के साथ इनफ़िरादी मुलाक़ातों के ज़रिये अपना मिशन शुरू करें और हालात का अंदाज़ा करते हुए धीरे-धीरे करके आगे बढ़ें। पहले तरीक़े में मुतशद्दिदाना टकराव (voilent confrontation) का अंदेशा था, इसलिए आपने उसे छोड़ दिया। इसके बजाय आपने दूसरे तरीक़े को इख़्तियार किया, जो वाज़ेह तौर पुर-अमन तरीक़ा था, जिसमें यह मुमकिन था कि लोगों से टकराव की सूरत-ए-हाल पैदा किए बग़ैर अपना काम जारी रखा जा सके।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी में यह पीसफ़ुल एक्टिविज़्म की पहली मिसाल थी। इसी तरह आपने अपनी पूरी तहरीक अमन के उसूल पर चलाई। इसी हक़ीक़त को एक हदीस में इस तरह फ़रमाया— "अगर तुम्हें किसी दुश्मन का सामना पेश आए तो ऐसा न करो कि रद्देअमल (reaction) की नफ़्सियात में मुब्तला होकर उससे लड़ जाओ, बल्कि अमन के उसूलों को इख़्तियार करते हुए दुश्मनी के मसले को हल करो।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 2,965)

Solve the problem of enmity by following the peaceful method.

इस तरह आप पुर-अमन अंदाज़ में काम करते रहे, यहाँ तक कि धीरे-धीरे 73 आदमी आपके मिशन में शामिल हो गए। उस वक़्त आपके एक सीनियर साथी अबू बकर सिद्दीक़ बिन अबी कहाफ़ा ने कहा कि अब हमें हमें ऐलान के साथ खुलेआम अपना काम करना चाहिए। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने कहा— "ऐ अबू बकर! अभी हम थोड़े हैं" लेकिन अबू बकर सिद्दीक़ ने इसके बावजूद ऐसा किया कि वह काबा में गए और वहाँ बुलंद आवाज़ से ऐलान करके लोगों को बताया कि मैं पूरी तरह मुहम्मद का साथी बन गया हूँ। यह सुनकर मुख़ालिफ़ीन की एक जमात दौड़कर आई। वह आपको मारने-पीटने लगी। उन्होंने आपको इतना ज़्यादा मारा कि आप ज़ख़्मी होकर गिर पड़े। मारने वालों ने अबू बकर सिद्दीक़ को सिर्फ़ उस वक़्त छोड़ा, जबकि उन्होंने समझा कि अब उनका ख़ात्मा हो गया है। (सीरत इब्न-ए-कसीर, जिल्द 1, सफ़हा 439)

उमर बिन अल-ख़त्ताब आपके साथियों में निहायत ताक़तवर शख़्स थे। उन्होंने भी पैग़ंबर-ए-इस्लाम से कहा कि हम हक़ पर हैं, फिर हम क्यों ख़ामोश रहें। हम ऐलान के साथ खुले तौर पर अपना काम करेंगे। यह सुनकर पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने फ़रमाया— "ऐ उमर हम थोड़े हैं। अबू बकर के साथ जो कुछ पेश आया, वह तुमने देख लिया।" (सीरत इब्न-ए-कसीर, जिल्द 1, सफ़हा 441)

धीरे-धीरे पैग़ंबर-ए-इस्लाम का मिशन फैलने लगा। आपके साथियों की तादाद बढ़ती रही। फिर वह वक़्त आया, जबकि ये 73 आदमी आकर आपसे मिले और बताया कि हम आपके मिशन में आपके साथ हो चुके हैं। उन्होंने कहा कि अब आप मक्का वालों की ज़्यादती को और ज़्यादा बर्दाश्त न कीजिए। हमें इजाज़त दीजिए कि हम मक्का वालों के ख़िलाफ़ जिहाद करें। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने फ़रमाया— "तुम लोग सब्र करो, क्योंकि मुझे लड़ाई का हुक्म नहीं दिया गया है।" (अल-मुवाहिब अल-लादुन्निय्याह, जिल्द 1, सफ़हा 199)

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की यह रविश बताती है कि वह हमेशा अमली नतीजे को सामने रखते थे। उनका यह मानना था कि—

इक़दाम को मुस्बत नतीजे का हामिल होना चाहिए।

Action should yield positive result.

ऐसा इक़दाम जो काउंटर प्रोडक्टिव (counter-productive) साबित हो, वह कोई इक़दाम नहीं। वह नतीजाख़ेज़ इक़दाम (result-oriented action) के हामी थे।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम की ज़िंदगी बताती है कि उनकी स्कीम में इस क़िस्म की चीज़ के लिए कोई जगह न थी, जिसे मौजूदा ज़माने में ख़ुदकुश बमबारी (suicide bombing) कहा जाता है। ख़ुदकुश बमबारी क्या है? वह दरअसल मायूसी का आख़िरी दर्जा है। इसका मतलब यह है कि आदमी महसूस करता है कि वह अपने मुख़ालिफ़ पर ग़लबा हासिल नहीं कर सकता, इसलिए वह यह चाहने लगता है कि फ़रीक़-ए-सानी को परेशान करने की ख़ातिर ख़ुद अपने आपको हलाक़ करे और फिर अपने आपको यह कहकर मुतमइन कर ले कि मैंने ऐसा इसलिए किया कि मैं शहीद हो जाऊँ।

दुश्मन के मुक़ाबले में खुदकुश बमबारी दरअसल यह है कि आदमी के सामने पीसफ़ुल एक्शन का इंतख़ाब खुला हुआ हो, मगर नफ़रत और इंतक़ाम के जज़्बात में मुब्तला होकर वह उसे नुक़सान पहुँचाने के लिए अंधा हो जाए और इस अंधेपन में वह ख़ुद अपने आपको ही हलाक़ कर डाले। कोई भी सूरत-ए-हाल जहाँ कोई शख़्स ख़ुदकुश बमबारी की चॉइस लेता है, वहाँ यक़ीनी तौर पर उसके लिए पुर-अमन तरीक़-ए-कार का रास्ता खुला होता है, मगर वह उसे देख नहीं पाता।

असल यह है कि पुर-अमन तरीक़-ए-कार का इंतख़ाब करने के लिए पहली ज़रूरी शर्त यह है कि आदमी का ज़हन नफ़रत और इंतक़ाम के जज़्बात से ख़ाली हो। वह ग़ैर-मुतास्सिर अंदाज़ में वाक़यात का तज्ज़िया करे। पैग़ंबर-ए-इस्लाम के अल्फ़ाज़ में— “वह चीज़ों को वैसा ही देख सके, जैसी कि वे हैं।” (तफ़सीर अल-राज़ी, जिल्द 1, सफ़हा 119)

पुर-अमन अमल एक मुस्बत अमल है और मुस्बत अमल की अहमियत को एक मुस्बत ज़हन ही समझ सकता है और इसके मुताबिक़ अपने अमल की मंसूबाबंदी कर सकता है।

अमनपसंदाना सोच

पीसफ़ुल एक्टिविज़्म बज़ाहिर एक बाहरी अमल है, मगर वह मुकम्मल तौर पर एक अंदरूनी शऊर का नतीजा होता है। यह सिर्फ़ पीसफ़ुल माइंड है, जो पीसफ़ुल एक्टिविज़्म की बात सोच सकता है और उसे दुरुस्त तौर पर अमल में ला सकता है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस हक़ीक़त को जाना। उन्होंने इस सिलसिले में यह किया कि सबसे पहले पीसफ़ुल माइंड बनाया। इसके बाद ही वह इस क़ाबिल हो सके कि पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के उसूल पर अपनी तहरीक चला सकें। इसी हक़ीक़त को आपने मज़हबी ज़बान में इस तरह बयान किया है— "जब आदमी का दिल दुरुस्त होता है तो उसके तमाम आमाल दुरुस्त हो जाते हैं।" (सही अल-बुख़ारी, हदीस नं० 52)

ज़हनसाज़ी के इस अमल को क़ुरआन में तज़किया कहा गया है। क़ुरआन के मुताबिक़ पैग़ंबर-ए-इस्लाम का एक अहम काम यह था कि वह लोगों का तज़किया करें (अल-बक़रा, 2:129) यानी रूह की ततहीर (purification of the soul)। इस तज़किये का तरीक़ा क्या था? यह पैग़ंबर-ए-इस्लाम की इस हदीस से मालूम होता है— "जब कोई गुनाह करता है तो उसके दिल पर एक काला धब्बा पड़ जाता है। अगर वह तौबा करे और उसे मिटा दे और इस्तिग़फ़ार करे तो उसका दिल धब्बे से पाक हो जाता है और अगर धब्बे में मज़ीद इज़ाफ़ा हो तो वह बढ़ता रहता है, यहाँ तक कि वह उसके पूरे दिल पर छा जाता है।" (मुसनद अहमद, हदीस नं० 7,952)

इस हदीस में पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने एक अहम नफ़्सियाती हक़ीक़त बताई है। नफ़्सियाती मुताला बताता है कि इंसान के ज़हन में जब कोई बात आती है तो वह हमेशा के लिए उसके हाफ़िज़े में इस तरह महफ़ूज़ हो जाती है कि फिर वह कभी नहीं निकलती। नफ़्सियात का मुताला मज़ीद बताता है कि इंसानी ज़हन के दो बड़े ख़ाने हैं— एक शऊर और दूसरा ला-शऊर। जब कोई बात इंसानी ज़हन में आती है तो वह पहले उसके ज़िंदा शऊर के ख़ाने में आती है। इसके बाद धीरे-धीरे वह ला-शऊर के ख़ाने में चली जाती है।

एक ख़ाने से दूसरे ख़ाने में जाने का यह अमल ख़ास तौर पर रात के वक़्त होता है। इस तरह अगरचे ऐसा होता है कि कोई बात जो आज ज़िंदा हाफ़िज़े (active memory) में है, बाद को वह दिमाग़ के पिछले ख़ाने में जाकर बज़ाहिर एक भूली हुई बात बन जाती है, मगर जहाँ तक शख़्सियत-ए-इंसानी का ताल्लुक़ है, वह लाज़िमी तौर पर इसका जुज़ बनती रहती है। हक़ीक़त यह है कि शख़्सियत-ए-इंसानी का बराह-ए-रास्त ताल्लुक़ इंसानी सोच से है। जैसी सोच, वैसी शख़्सियत।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम के मज़्कूरा क़ौल का मुताला जदीद नफ़्सियाती तहक़ीक़ की रोशनी में किया जाए तो मालूम होता है कि इस क़ौल-ए-रसूल में पीसफ़ुल थिंकिंग और पीसफ़ुल एक्टिविज़्म का असल राज़ बता दिया गया है। सही मायनों में वही शख़्स पीसफ़ुल एक्टिविस्ट बन सकता है, जो मज़्कूरा क़ौल-ए-रसूल पर अमल करे। इस अमल को आजकल की ज़बान में डी-कंडीशनिंग कहा जा सकता है।

हर इंसान और हर इंसानी गिरोह ऐसे माहौल में रहता है, जहाँ हर वक़्त ऐसे वाक़यात पेश आते हैं, जो उसके लिए ना-ख़ुशगवार हों, जो उसके अंदर फ़रीक़-ए-सानी के ख़िलाफ़ मनफ़ी एहसासात पैदा करें। इस तरह गोया हर आदमी के ज़हन में बार-बार मनफ़ी नौइयत के एहसासात आते रहते हैं। अगर आदमी इस मनफ़ी एहसास को फ़ौरी तौर पर बदलकर मुस्बत एहसास न बनाए तो वह आगे बढ़कर उसके ला-शऊर में एक मनफ़ी आइटम के तौर पर महफ़ूज़ हो जाएगा। यह अमल अगर बिला रोक-टोक जारी रहे तो आख़िरकार यह होगा कि उसका ला-शऊर या उसका हाफ़िज़ा मनफ़ी आइटम से भर जाएगा और इसके नतीजे में उसकी पूरी शख़्सियत मनफ़ी शख़्सियत बन जाएगी। यही वह मनफ़ी शख़्सियत है, जिसके हामिल अफ़राद दूसरों के ख़िलाफ़ तशद्दुद और जंग में मुब्तला हो जाते हैं। तशद्दुद दरअसल मनफ़ी शख़्सियत के ख़ारिजी इज़्हार का दूसरा नाम है।

दूसरी सूरत यह है कि जब आदमी के ज़हन में कोई मनफ़ी एहसास आए तो उसी वक़्त वह उसे बदलकर मुस्बत एहसास बना ले। जो आदमी अपने अंदर कनवर्जन (conversion) का यह अमल जारी करे, उसका यह हाल होगा कि उसका पूरा ला-शऊर या हाफ़िज़ा मुस्बत आइटम का स्टोर बन जाएगा। इसका

फ़ायदा उसे यह मिलेगा कि उसकी शख़्सियत ऐसी शख़्सियत बनेगी, जो हर क़िस्म के नेगेटिव एहसास से ख़ाली होगी। ऐसा आदमी मुकम्मल तौर पर एक पॉज़िटिव शख़्सियत का हामिल होगा। यही वह लोग हैं, जो पुर-अमन ज़हन में जीते हैं और यही वह लोग हैं, जो पीसफ़ुल एक्टिविज़्म के उसूल के मुताबिक़ कोई तहरीक चला सकते हैं।

पैग़ंबर-ए-इस्लाम ने इस नफ़्सियाती (psychological) हक़ीक़त को समझा और तज़किया, दूसरे अल्फ़ाज़ में, दीगर एक शख़्स पर डी-कंडीशनिंग का अमल जारी करके एक लाख से ज़्यादा अफ़राद की एक टीम बनाई। यह वे लोग थे, जो पूरे मायनों में अमनपसंदी का मिज़ाज रखते थे। अपने इस मिज़ाज की बिना पर उनके लिए यह मुमकिन हुआ कि पीसफ़ुल एक्टिवज़्म के उसूल के मुताबिक़ अमल कर सकें और अमन के दायरे में रहते हुए एक इंक़लाब लाएँ।

सवाल-जवाब

सवाल

आपको लफ़्ज़-ए-जिहाद की तारीफ़ में कुछ लीफ़लेट्स रवाना किए जा रहे हैं। ग़ौर और सब्र के साथ पढ़कर उनका जवाब दें। उन्हें पढ़कर यही समझ में आता है कि क़ुरआन को ख़ुदाई किताब कहने वाला इंसानियत का दुश्मन है और सर्वधर्म समभाव का भी दुश्मन है। (शिव गौड़, संगारेड्डी)

जवाब

शिव गौड़ साहिब ने अपने इस ख़त के साथ हमें अंग्रेज़ी में 41 सफ़हात की फ़ोटो कॉपियाँ भेजी हैं। इसका जवाब यहाँ तहरीर किया जाता है। आपने अपने ख़त में 24 आयतें नक़ल की हैं, जिनमें इस तरह की बातें हैं कि उनसे लड़ो, उनसे दोस्ती न करो, उनके साथ नरमी से न पेश आओ। उनके ख़िलाफ़ जिहाद करो वग़ैरह-वग़ैरह।

वाज़ेह रहे कि क़ुरआन की ये आयतें जो आपने नक़ल की हैं, वे ग़ैर-मुसलमान के साथ मुसलमान के ताल्लुक़ को नहीं बतातीं, बल्कि वे जंग करने वालों के साथ मुसलमान के ताल्लुक़ को बताती हैं और जंग के मुआमले में यही

सारी दुनिया का माना हुआ (accepted) उसूल है। इन आयतों की बुनियाद पर आपने इस्लाम के बारे में जो शदीद राय क़ायम की है, वह सरासर ग़लतफ़हमी पर मबनी है। आपने क़ुरआन की मज़्कूरा आयतों को आम मायनों में ले लिया है। हालाँकि ये आयतें हंगामी हालात के लिए हैं। ये उस वक़्त के लिए हैं, जबकि मुसलमानों और दूसरी क़ौम के दरम्यान जंग (state of war) क़ायम हो गई हो और यह एक मालूम हक़ीक़त है कि हालत-ए-जंग में हमेशा ऐसा ही किया जाता है। जहाँ तक नॉर्मल हालात में लोगों के साथ मुसलमान के सुलूक का ताल्लुक़ है, वह दूसरी आयतों से मालूम होता है, जो क़ुरआन में कसरत से मौजूद हैं।

इन दूसरी आयतों में मुसलमानों को तमाम इंसानों के साथ हमदर्दी और ग़मख़्वारी का सुलूक करने का हुक्म दिया गया है (सूरह अल-बलद, 90:17)। इसी तरह हुक्म है कि दरगुज़र (tolerance) का तरीक़ा इख़्तियार करो। (सूरह अल-आराफ़, 7:199)

इसी तरह पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया— “उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, अल्लाह अपनी रहमत सिर्फ़ रहम करने वाले पर करता है।” (मुसनद अबू यअला, हदीस नं० 4,258)। लोगों ने कहा हम सब रहम करते हैं, आपने कहा कि तुम्हारा अपने साथी पर रहम करना मुराद नहीं है, तमाम इंसानों के साथ रहम का मुआमला किया जाए वग़ैरह-वग़ैरह ।

जहाँ तक ग़ैर-मुसलमानों से ताल्लुक़ का मुआमला है, क़ुरआन में उसकी बाबत एक बुनियादी उसूल मुक़र्रर कर दिया गया है— “अल्लाह तुम्हें उन लोगों से नहीं रोकता, जिन्होंने दीन के मुआमले में तुमसे जंग नहीं की और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला, तुम उनसे भलाई करो और तुम उनके साथ इंसाफ़ करो। बेशक अल्लाह इंसाफ़ करने वालों को पसंद करता है। अल्लाह बस उन लोगों से तुम्हें मना करता है, जो दीन के मुआमले में तुमसे लड़े और तुम्हें तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकलने में मदद की, तुम उनसे दोस्ती न करो और जो उनसे दोस्ती करे तो वही लोग ज़ालिम हैं।” (60:8-9)

क़ुरआन की इन दोनों आयात का मतलब यह है कि जिन लोगों ने तुमसे जंग नहीं की, तुम्हें भलाई का मुआमला करना चाहिए, मगर जो लोग तुम्हारे ख़िलाफ़ जंगी कार्रवाई कर रहे हैं, उनके साथ बतौर डिफेंस जंग करो। क़ुरआन

के मुताबिक़, आम इंसानों को तकलीफ़ देना सख़्त मना है, दुश्मन (enemy) और लड़ने वाले (combatant) के दरम्यान भी फ़र्क़ करना चाहिए। क़ुरआन का हुक्म यह है कि बज़ाहिर अगर कोई शख़्स या गिरोह तुम्हारा दुश्मन हो, तब भी तुम्हें उसके साथ अच्छा ताल्लुक़ क़ायम रखना चाहिए।

जैसा कि क़ुरआन में दूसरे मुक़ाम पर यह हुक्म दिया गया है कि एक शख़्स अगर बज़ाहिर तुम्हारा दुश्मन हो, तब भी तुम उसके साथ सबसे अच्छे तरीक़े पर मुआमला करो, ऐन मुमकिन है कि वह किसी दिन तुम्हारा दोस्त बन जाए। क़ुरआन में आया है—

وَلَا تَسْتَوِي الْحَسَنَةُ وَلَا السَّيِّئَةُ ادْفَعْ بِالَّتِي هِيَ أَحْسَنُ فَإِذَا الَّذِي بَيْنَكَ وَبَيْنَهُ عَدَاوَةٌ كَأَنَّهُ وَلِيٌّ حَمِيمٌ

“भलाई और बुराई दोनों बराबर नहीं। तुम जवाब में वह कहो, जो उससे बेहतर हो, फिर तुम देखोगे कि तुममें और जिसमें दुश्मनी थी, वह ऐसा हो गया, जैसे कोई दोस्त क़राबत वाला।” (41:34)

इन आयात से मालूम होता है कि अहल-ए-ईमान को जंग की इजाज़त सिर्फ़ उस वक़्त है, जबकि फ़रीक़-ए-मुख़ालिफ़ (opponent) की तरफ़ से हमले का आग़ाज़ हो चुका हो, लेकिन जो इस जंग में शामिल नहीं हैं, उन्हें बिलकुल भी तकलीफ़ नहीं दी जाएगी, ख़्वाह वह दिल में दुश्मनी रखता हो। इंटरनेशनल मुआमलात में यही सारी दुनिया का माना हुआ उसूल है और इस्लामी शरीयत में भी इसी उसूल को इख़्तियार किया गया है।

वाज़ेह रहे कि क़ुरआन एक साथ एक वाहिद किताब की सूरत में नहीं उतरा, बल्कि वह हालात के ऐतबार से 23 साल के दौरान उतरा। 23 साल की इस मुद्दत को उमूमी तौर पर दो हिस्सों में तक़्सीम किया जा सकता है— एक 20 साल और दूसरा 3 साल। इस 23 साला मुद्दत के नुज़ूल में 20 साल गोया अमन के साल थे और तक़रीबन 3 साल जंगी हालात के साल। आपने जिन 24 आयतों का हवाला दिया है, वे मज़्कूरा तक़्सीम के मुताबिक़ 3 साल वाले इमरजेंसी के हालात में उतरीं। क़ुरआन की दूसरी आयतें जो 20 साल वाली मुद्दत में उतरीं, वे सब-की-सब अमन और इंसाफ़ और इंसानियत जैसी मुस्बत तालीमात पर मुश्तमिल (based) हैं।

सवाल

क़ुरआन में कई आयतें ऐसी हैं, जो मुसलमानों से कहती हैं कि काफ़िरों को क़त्ल करो। यही वजह है कि मुसलमान जिहादी हो गए हैं और ग़ैर-मुसलमानों को क़त्ल करना अपना फ़र्ज़ समझते हैं। मसलन क़ुरआन में यह आयत है—

وَاقْتُلُوهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوهُمْ وَأَخْرِجُوهُمْ مِنْ حَيْثُ أَخْرَجُوكُمْ وَالْفِتْنَةُ أَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ وَلَا تُقَاتِلُوهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتَّى يُقَاتِلُوكُمْ فِيهِ فَإِنْ قَاتَلُوكُمْ فَاقْتُلُوهُمْ كَذَلِكَ جَزَاءُ الْكَافِرِينَ

"क़त्ल करो उन्हें, जिस जगह पाओ और निकाल दो उन्हें, जहाँ से इन्होंने तुम्हें निकाला है। फ़ित्ना सख़्ततर है क़त्ल से और उनसे मस्जिद-ए-हराम के पास न लड़ो, जब तक कि वे तुमसे जंग न छेड़ें। पस अगर वे तुमसे जंग छेड़ें तो उन्हें क़त्ल करो। यही सज़ा है काफ़िरों की।" (2:191)

सवाल यह है कि क़ुरआन में जब तक इस तरह की आयतें मौजूद हैं तो मुसलमानों का ग़ैर-मुसलमानों के साथ शांति से रहना कैसे मुमकिन है। (अशोक सिंघल, दिल्ली)

जवाब

यह आयत ख़ुद ही यह बता रही है कि जंग का हुक्म काफ़िर के ख़िलाफ़ नहीं है, बल्कि मुक़ातिल (हमलावर) के ख़िलाफ़ है। जैसा कि ख़ुद उसी आयत में कहा गया है— "पस अगर वे जंग छेड़ दें तो तुम भी दिफ़ा में उनसे जंग करो।"

इसी तरह मज़्कूरा आयत से पहले ये अल्फ़ाज़ हैं—

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ

"जो लोग तुमसे जंग करते हैं, उनसे तुम (in self-defence) जंग करो और तुम ख़ुद जारहीयत (aggression) न करो।" (2:190)

चुनाँचे क़ुरआन और पैग़ंबर-ए-इस्लाम की सुन्नत का मुताला किया जाए तो यह मालूम होता है कि इस्लाम में सिर्फ़ दिफ़ाई जंग जायज़ है और इसका इख़्तियार भी सिर्फ़ हाकिम-ए-वक़्त को हासिल होता है, किसी ग़ैर-हुकूमती गिरोह को हथियारबंद जद्दोजहद (armed struggle) की हरगिज़ इजाज़त

नहीं। इसी तरह इससे मालूम हुआ कि इस्लाम में क़िताल का हुक्म एक वक़्ती (temporary) सबब के लिए है। वह इस्लाम का कोई ऐसा हुक्म नहीं है, जो हर लम्हा जारी रहे। जब दिफ़ा का सबब ख़त्म हो जाएगा तो जंग का हुक्म भी अमलन मौक़ूफ़ (suspend) हो जाएगा यानी जब अमन का ज़माना हो तो जंग नहीं की जाएगी। यही इस्लाम की इब्तिदाई तारीख़ में पेश आया। इस्लाम के इब्तिदाई दौर में माज़ी के तसलसुल (continuation) के तहत जंग की सूरत पेश आई यानी उन्होंने पैग़ंबर-ए-इस्लाम के ख़िलाफ़ नाहक़ जंग छेड़ दी और इस तरह रसूलुल्लाह को दिफ़ाई (defensive) क़दम उठाने पर मजबूर कर दिया, मगर जंग का यह हुक्म वक़्ती था। क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में जब फ़रीक़-ए-मुख़ालिफ़ ने अपना औज़ार (हथियार) रख दिया तो जंग का ख़ात्मा हो गया। (सूरह मुहम्मद, 47:4)

इस सिलसिले में दूसरी बात यह है कि क़ुरआन में जिन चंद मुक़ामात पर काफ़िर का लफ़्ज़ आया है, उससे पैग़ंबर-ए-इस्लाम के ज़माने के इनकार करने वाले मुराद हैं। क़ुरआनी इस्तिलाह के मुताबिक़ ऐसा नहीं है कि लफ़्ज़ काफ़िर अबद तक के लिए हर ग़ैर-मुस्लिम गिरोह के लिए बोला जाएगा यानी काफ़िर किसी क़ौम या नस्ल का दाइमी (permanent) लक़ब नहीं है। चुनाँचे अहल-ए-इस्लाम ने बाद के ज़माने के लोगों के लिए जो अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किए वे काफ़िर या कुफ़्फ़ार न थे, बल्कि ये वही अल्फ़ाज़ थे, जो कि कौमें ख़ुद अपने लिए इस्तेमाल कर रही थीं, मसलन हिंदू, यहूद, इसाई, पारसी, बौद्ध वग़ैरह। इस्लामी उसूल के मुताबिक़ किसी क़ौम को उसी नाम से पुकारा जाएगा, जो नाम जिसने ख़ुद अपने लिए इख़्तियार किया हो।

क़ुरआन के मुताबिक़ पैग़ंबरों ने जब अपने ज़माने के ग़ैर-मोमिन लोगों को पुकारा तो उन्होंने यह नहीं कहा कि 'ऐ काफिरो', बल्कि यह कहा कि 'ऐ मेरी क़ौम के लोगो'। चुनाँचे क़ुरआन में पैग़ंबर की ज़बान से पचास बार ये अल्फ़ाज़ आए हैं— 'या-क़ौमे' (ऐ मेरी क़ौम) इसी तरह क़ुरआन में पैग़ंबरों के हम-ज़माना ग़ैर-मोमिनीन को उनकी क़ौम का नाम दिया गया है, मसलन क़ौम-ए-लूत, क़ौम-ए-सालेह, क़ौम-ए-हूद, क़ौम-ए-नूह वग़ैरह। हदीस में आया है कि पैग़ंबर को उनके मुख़ालिफ़ीन ने पत्थर मारा और उनकी पेशानी से ख़ून बहने लगा। उस वक़्त पैग़ंबर की ज़बान से निकला— "ऐ मेरे रब, मेरी क़ौम को माफ़ कर दे, क्योंकि वह लोग नहीं जानते।" (मुसनद अहमद, हदीस नं० 4,057)

इससे मालूम हुआ कि पैग़ंबरों का नज़रिया 'दो क़ौमी नज़रिया' (Two Nation Theory) न था, बल्कि वह 'एक क़ौमी नज़रिया' था यानी जो क़ौमियत पैग़ंबर की थी, वही क़ौमियत पैग़ंबर के मुख़ातबीन की भी थी। पैग़ंबर और उनके मुख़ातबीन के दरम्यान जो फ़र्क़ था, वह क़ौमियत का फ़र्क़ न था, बल्कि अक़ीदे और मज़हब का फ़र्क़ था। जैसा कि क़ुरआन में है—

لَكُمْ دِينُكُمْ وَلِيَ دِينِ

"तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन और मेरे लिए मेरा दीन।" (109:6)

क़ुरआन में अल-इंसान (वाहिद) का लफ़्ज़ 65 बार आया है और अल-नास (इंसान की जमा) 240 बार आया है। इसके मुक़ाबले में काफ़िर का लफ़्ज़ सिर्फ़ पाँच बार क़ुरआन में आया है और उसकी जमा अल-कुफ़्फ़ार, अल-काफ़िरून और अल-काफ़िरीन के अल्फ़ाज़ 150 बार आए हैं। इससे अंदाज़ा होता है कि इस मुआमले में क़ुरआन का तसव्वुर क्या है। क़ुरआन की नज़र में यह ज़मीन दार-उल-इंसान (इंसान का घर) है, न कि दार-उल-हर्ब (जंग का मैदान)।

ऐलान

इंसानियत की तामीर में ख़वातीन का एक अहम रोल है, मगर पूरी तारीख़ में उन्हें अंडर यूटीलाइज़ (under utilize) किया गया है। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ साहिब ने इस्लामी तारीख़ में ख़वातीन के रोल को दरयाफ़्त किया, मसलन हज़रत हाजरा और हज़रत ख़दीजा वग़ैरह और इसे एक्सप्लेन करके मौजूदा दौर की ख़वातीन को बताया कि वे उनके नक़्श-ए-क़दम पर चलें और अपने (potential) आपको एक्चूलाइज़ (actualize) करके उस तारीख़ को दोहराएँ, जो तारीख़ उन ख़वातीन ने बनाई थी। इस सिलसिले में उन्होंने क़ुरआन-ओ-सुन्नत और तारीख़ के हवाले से कई किताबें लिखी हैं, जैसे— 'औरत— मेमार-ए-इंसानियत', 'ख़ातून-ए-इस्लाम' अब उनकी रहनुमाई में सी.पी.एस. लेडीज़ ने एक दावती ग्रुप शुरू किया है, जिसका नाम है— 'CPS Ladies International'

इस ग्रुप में हिंदुस्तान और हिंदुस्तान के बाहर की ख़वातीन शामिल हैं। यह ग्रुप 29 अक्तूबर, 2020 को शुरू हुआ और इतने कम वक़्त में ख़वातीन ने जो फीडबैक दिया, वह बहुत ही हैरतअंगेज़ है। उन्होंने बताया कि उनकी ज़िंदगी में मुस्बत तब्दीली आई है। उन्होंने इस ग्रुप में शामिल होकर हक़ीक़ी इस्लाम को समझा है। इससे पहले उनके नज़दीक इस्लाम का मतलब कुछ समाजी रसूम था, न कि वह इस्लाम, जो अल्लाह ने अपने पैग़ंबर के ज़रिये भेजा है।

सी.पी.एस. लेडीज़ इंटरनेशनल से जुड़ने के लिए राब्ता क़ायम करें—

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।
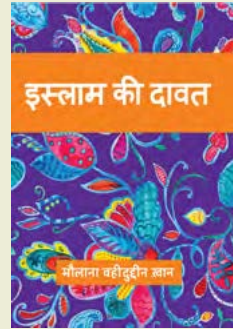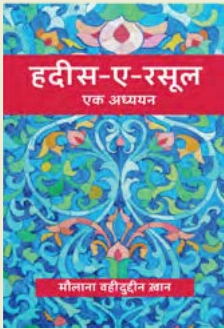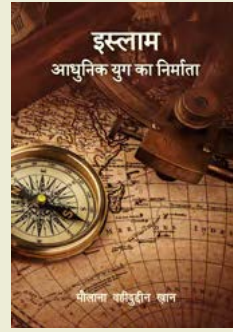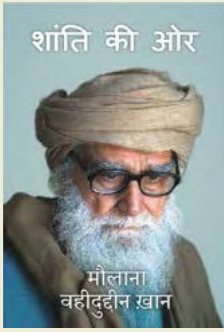
आध्यात्मिक सेट

₹30/-
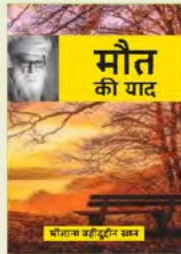
₹40/-
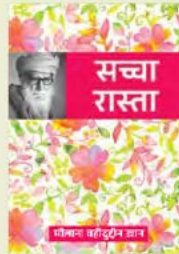
₹20/-
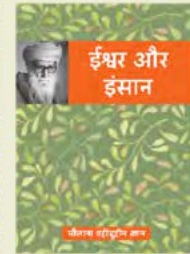
₹40/-
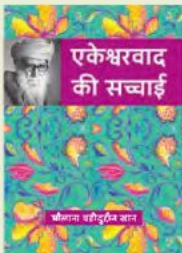
₹30/-
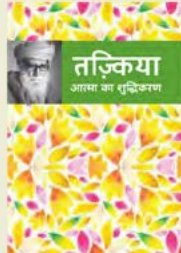
₹45/-
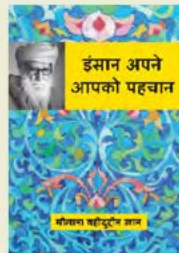
₹20/-
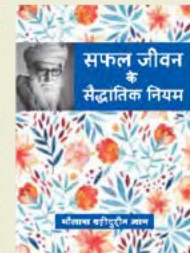
₹40/-

आध्यात्मिक सेट पवित्र क़ुरआन सहित केवल ₹160